मानस-प्रवचन

प्रकाशक : बिरला अकादमी ऑफ आर्ट एण्ड कल्चर
१०८/१०९ सदर्न एवेन्यू, कलकत्ता-२९

मूल्य : आठ रुपये

संस्करण : रामनवमी, संवत् २०४१

मुद्रक : कंवल किशोर एण्ड कम्पनी,
नम्बेरवाल प्रेस, नई दिल्ली-५ से मुद्रित

॥ श्री रामः शरणं मम् ॥

मानस प्रवचन माला का छठा पुष्प प्रस्फुटित होने जा रहा है। यह प्रभु के करकमलों में समर्पित है। इसे प्रभु स्वीकार करेंगे इस हार्दिक विश्वास के साथ उन लोगों का स्मरण करना स्वाभाविक है जिनके प्रेम पूर्ण प्रयास का ही यह सुपरिणाम है।

यह प्रकाशन श्री वसन्तकुमार जी बिरला तथा सौजन्यमयी श्रीमती सरला जी बिरला की महान श्रद्धा से संभव हो रहा है। श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर देहली में नवरात्रि के अवसर पर उनके द्वारा मानस प्रवचन सत्र का जो आयोजन पिछले वर्षो से सम्पन्न हो रहा है उसका ही लेखनमय रूप इस प्रवचन माला के माध्यम से विकसित हो रहा है। एतदर्थ वे साधुपाद के पात्र है।

इसके सजाने सँवारने का मुख्य भार श्री नन्दकिशोर जी स्वर्णकार और श्री विष्णुकांत पाण्डेय ने उठाया है। स्वर्णकार जी ने बड़ी श्रद्धा-भावना से वहुत थोड़े समय में इसे टेप से रूपान्तरित किया है। श्री विष्णुकांत जी ने इसे उतने ही उत्साह से सम्पादित और प्रेस-कॉपी का रूप देने में श्रम किया है। इस कार्य में उनके सहयोगी कु० रजनी पाण्डेय, श्री श्रीकान्त पाण्डेय और श्री गोविन्द नायडू रहे है। इन सभी को मेरा हार्दिक आशीर्वाद। मेरे प्रिय शिष्य उमाशङ्कर जी, गोविन्दप्रसाद दुबे और मैथिलीशरण (सुरेश) शर्मा भी इस प्रकाशन कार्य में अपनी सेवा के माध्यम से सम्मिलित रहे है।

इसके समय पर प्रकाशन का सारा श्रेय श्री बाबूलाल जी बियाणी को है। प्रवचन सत्र के प्रवन्ध का सारा भार तो वे उठाते ही हैं, उसके प्रकाशन को यह रूप देने का कार्य भी वे ही सम्पन्न करते है। इसके लिए मैं उनको साधुवाद देता हूँ।

—रामकिकर

अनुक्रम

श्री रामः शरणं मम्

१

बरबस राम सुमंत्रु पठाये ।
सुरसरि तीर आपु तब आए ॥
मांगी नाव न केवटु आना ।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहुं सबु कहई ।
मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई ॥
पाहन ते न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई ।
बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥
एहिं प्रतिपालउं सबु परिवारू ।
नहिं जानउं कछु अउर कबारू ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू ।
मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहौं ॥
बरु तीर मारहुं लखनु पै जब लगि न पांय पखारिहौं ।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पार उतारिहौं ॥
सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहंसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन ॥ २।१००

भगवान श्री राघवेन्द्र की महती अनुकम्पा से पुनः इस वर्ष यह सुअवसर और सौभाग्य मिला है कि, हम लोग भगवान लक्ष्मीनारायण के पावन सान्निध्य मे भगवत् चरित्र की कुछ चर्चा कर सके। आयोजन का श्रेय 'विरला अकादमी आफ आर्ट एण्ड कल्चर' को है। पर संस्था तो व्यक्ति की शक्ति से ही चलती है, अत. सत्य तो यह है कि इसके पीछे श्रद्धामयी श्रीमती सौभाग्यवती सरला जी विरला और श्री वसन्त कुमार जी विरला की श्रद्धा भावना है। जिसमें निरन्तर उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है और इसी का प्रतिफल इस रूप में मिलता है जब वक्ता और श्रोता के रूप मे हम लोग कथा रस का रसास्वादन कर पाते है। इसमे जैसा आपको सूचित किया गया कि रस की वृद्धि की दृष्टि से प्रात:काल नवाह्न पाठ का स्वरूप भी सम्मिलित कर लिया गया है। अत. इन दम्पत्ति के अन्तःकरण मे जो श्रद्धा भावना है, मैं भगवान से यही प्रार्थना करूगा कि वह निरन्तर बढती रहे और विविध क्षेत्रो मे इनकी सेवाए समाज को प्राप्त होती रहे।

प्रसङ्ग के सन्दर्भ मे अभी जो पंक्तिया आपके सामने पढी गयी है, एक तरह से देखे तो यह पीछे लौटने का प्रयास है। पिछले वर्ष श्री भरत के पावन चरित्र की चर्चा की गयी थी, किन्तु अनेक लोगों ने मुझे उलाहना दिया कि श्री भरत का चरित्र तो अप्रतिम है ही, किन्तु भगवान श्रीराम की वन यात्रा मे जिन अनेक भावुक भक्तो का परिचय मानस मे दिया गया है, उन प्रसङ्गो पर भी चर्चा की जानी चाहिए। तो इसमे आइये, हम लोग थोड़ा और पीछे लौट चलें और उस प्रसङ्ग पर विचार करे जिसकी पक्तिया आपके सामने अभी पढ़ी गई है। वैसे यह प्रसङ्ग तो ऐसा प्रसङ्ग है, जो अत्यधिक प्रचलित और चर्चित है। साधारण से साधारण व्यक्ति को भी इसमे विशेप रसानुभूति होती है। लेकिन इस प्रसङ्ग का सही मूल्याकन इतना ही नही है। इसमें जनरंजन के साथ-साथ, यदि गहराई से विचार करके देखे तो ऐसा लगेगा कि यह प्रसङ्ग हमारे आज के युग के सन्दर्भ में भी महत्वपूर्ण है। और इसकी विलक्षणता यह है कि आपको सामाजिक सन्दर्भ मे, राजनैतिक सन्दर्भ में, और ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के सन्दर्भ मे, विविध दष्टियो से जब आप इस पर दृष्टि डालेंगे तो आपको नन्हा

सा यह केवट प्रसङ्ग जितना मधुर प्रतीत होगा, उतना ही गम्भीर भी प्रतीत होगा। मैं आप लोगों के समक्ष इन आठ दिनों में संक्षिप्त रूप से केवट प्रसङ्ग पर एक दृष्टि डालने की चेष्टा करूंगा। मुझे विश्वास है कि प्रतिवर्ष की भांति आप अपने पूरे मनोयोग और प्रेम से इसे सुनेंगे।

जहां तक केवट प्रसङ्ग के घटनाक्रम का सम्बन्ध है, शायद ही रामचरितमानस का कोई ऐसा पाठक या जानने वाला हो जो इससे परिचित न हो। प्रसङ्ग की पृष्ठभूमि में संकेत इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि महाराज श्री दशरथ के आदेश से सुमन्त रथ ले करके आते है और भगवान राम से यह अनुरोध करते है कि वे रथ पर बैठ जाये। श्रीराम ने उनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया, रथ पर आरूढ़ हो गये, लेकिन शृङ्गवेरपुर मे पहुच करके जब वे रात्रि को विश्राम करते है तो प्रातःकाल होते ही वहा बड़ा करुण दृश्य उपस्थित हो जाता है। जब श्री सुमन्त जी ने महाराज श्रीदशरथ का अनुरोध श्री राघवेन्द्र को सुनाया कि मुझे आदेश मिला है, कि मै रथ पर बैठा करके आपको चार दिनों तक वन में घुमाऊं और अयोध्या लौटा ले आऊं। भगवान श्री राघवेन्द्र ने इस अनुरोध को स्वीकार नही किया। बड़े स्नेह से उन्होंने सुमन्त जी को समझाया। अन्त में सुमन्त जी इतने व्याकुल हो गए कि नन्हें बालक की तरह रोने लगें, पर श्री राघवेन्द्र ने बड़े विनयपूर्वक उनसे यह अनुरोध किया कि आप इस विषय मे मुझसे आग्रह न करे। और इस प्रकार से समन्त जी से विदा लेकर उस करुण वातावरण के पश्चात् भगवान श्रीराम गंगा के किनारे आकर खड़े हो जाते है। गंगा के किनारे वे पार जाने के लिए नौका की याचना करते है, किन्तु गंगा के तट पर एक अनोखा व्यक्ति बैठा हुआ है नौका पर, जिसने प्रभु की बात को अस्वीकार करते हुए कहा कि मै नाव नहीं ले आऊंगा। क्योकि मुझे भय है कि कही आपको पार उतारने की चेष्टा में मेरी नौका ही समाप्त न हो जाय। और इस प्रकार बड़ी विलक्षण भाषा में अपनी अनोखी शर्त रखता हुआ अन्त मे भगवान श्री राघवेन्द्र को बाध्य करता है कि वे चरण प्रक्षालन की आज्ञा दे। और चरण प्रक्षालन के बाद केवट उन्हें पार उतार देता है।

अव आप यह जो नन्हा सा केवट प्रसङ्ग है, उसको कई भिन्न सन्दर्भो मे देखें। एक सन्दर्भ मे तो, यह जो भगवान श्रीराम की वन-यात्रा है, इस वनयात्रा का केवल वहिरङ्ग रूप तो यह है कि कैकेयी जी के हठ या आग्रह के कारण, वरदान मांगने के कारण श्रीराम को वन जाना पडा। इस कारण की चर्चा पिछले वर्ष की गई थी। भगवान राघवेन्द्र ने कैकेयी के इस आदेश के पीछे जो छिपे हुए अनेक महत्वपूर्ण कारण है, उन्हे पहिचाना और उन्हे अत्यन्त प्रसन्नता हुयी कि मां ने ऐसा सुअवसर उन्हे दिया है। तो एक उद्देश्य तो वह है जिसकी व्याख्या पिछले वर्ष की गई थी कि, अगर श्रीराम वन न जाते तो श्री भरत का जो व्यक्तित्व है वह प्रगट न होता। किन्तु वस्तुत· केवल श्री भरत के व्यक्तित्व को प्रगट करना ही इसका उद्देश्य नही है। मै इस अर्थ मे कहूंगा कि श्री भरत का जो दिव्य प्रेम प्रगट हुआ, वह वस्तुत. अद्भुत् होते हुए भी ऐसा नही है कि जिसके विपय में आशा न की जाती हो। लेकिन जव केवट प्रसङ्ग मे केवट के प्रेम की वात और केवट के अटपटे रूप का परिचय मिलता है तो चकित हो जाना पड़ता है कि, समाज का इतना निर्धन, इतना नीचे का, जो निम्न से निम्न माना जाने वाला व्यक्ति है, वह श्री राघवेन्द्र के प्रति इतना अनुरागमय है कि वह अपनी भाषा मे श्रीराम को अपनी शर्तें पूरी करने के लिए वाध्य करता है। और श्रीराम उसका हठ, उसके अनुरोध को ज्यो का त्यो स्वीकार कर लेते है। वह तो भगवान श्री राघवेन्द्र से यह कहता है कि मुझे कोई आवश्यकता आपको पार ले जाने की नही है, यदि आपको पार जाने की आवश्यकता हो तो निर्णय भी आपको ही करना है। क्या ? कि फिर आपको मेरी इच्छा के अनुकूल चलना होगा। और वड़े आश्चर्य की वात है कि भगवान श्री राघवेन्द्र, केवट ने जैसा-जैसा कहा, वैसा करना स्वीकार कर लेते है। तो केवट जैसा एक साधारण सा व्यक्ति, जिस भापा में भगवान श्रीराम से वात करता है वह सर्वथा एक ऐसी विचित्र वात थी कि जिसमे एक क्षण के लिए जनकनन्दिनी सीता और श्री लक्ष्मण भी आनन्द नही ले पाते है। क्योकि केवट का व्यवहार इस दृष्टि से वड़ा विचित्र था। प्रभु के आने पर वह उठ करके खड़ा भी नही हुआ। भगवान श्री राघवेन्द्र किनारे पर खड़े हो गए तो नौका पर बैठे ही

बठे, वह भगवान श्रीराम से बातचीत करने लगा। यह जब केवट का व्यवहार देखा तो जनकनन्दिनी सीता को बड़ा विचित्र लगा। उन्हे इस प्रकार का व्यवहार कुछ उपयुक्त नही प्रतीत हुआ। और श्री लक्ष्मण जी तो बहुत ही अनुशासन प्रिय और तेजस्वी स्वभाव के है। उनको तो लगता है कि शायद यह बहुत ही अनुशासनहीन व्यक्ति है जो इस प्रकार की धृष्टता कर रहा है। लेकिन भगवान श्रीराम को केवट की इस वाणी में न जाने कितना आनन्द आया कि उन्होंने स्वयं तो आनन्द लिया ही, उन दोनों को भी निमंत्रित किया कि अरे भई! इस आनन्दोल्लास में तुम लोग क्यो नही भाग ले रहे हो ? इसलिए अभी जो पंक्तियाँ पढी गयी है, उसका अन्तिम दोहा है :—

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहंसे करुनाऐन चितई जानकी लखन तन ॥ २/१००

भगवान श्री राघवेन्द्र खूब हंसते हैं, और हसते हुए जनकनन्दिनी सीता और श्री लक्ष्मण को देखते है। इसका निहित तात्पर्य यही है कि वे दोनों नही हंस पा रहे है। भगवान उन्हें भी हसी में भाग लेने के लिए आमन्त्रित करते है। तो केवट के व्यवहार में श्रीराम को जो रसानुभूति होती है, उसके द्वारा गोस्वामी जी वस्तुतः बताना क्या चाहते है ? यह जानने के लिए इसे कई भिन्न सन्दर्भो मे देखने की अपेक्षा है। भक्ति के सन्दर्भ में तो यह अद्भुत है ही, पर एक सन्दर्भ इसका और भी है और वह यह है कि भगवान श्री राघवेन्द्र ने अपने वनगमन को किस दृष्टि से देखा ? भई ! यह तो अपनी अपनी दृष्टि होती है। ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से भगवान श्रीराम की कुण्डली में मङ्गल बिगड गया था, इसलिए राज्य मिलते मिलते राज्य से वंचित होना पड़ा। राजनीति की दृष्टि से कैकेई और मन्थरा के षड़यन्त्र के कारण राज्य मिलते मिलते राज्य से वंचित होना पड़ा। पर स्वयं भगवान श्रीराम की दृष्टि से यह नही है। स्वयं भगवान राम की दृष्टि इसमे बिल्कुल भिन्न है। इसलिए एक बडा मीठा व्यङ्गात्मक प्रसङ्ग आता है। रात्रि के समय जब भगवान राम कुश की शैय्या पर शयन कर रहे थे तो उनको देख करके निषाद की आँखों मे आंसू आ गये और व्याकुल हो करके वे कैकेई की निन्दा करने लगे :—

कैकेयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह ।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥ २/९१

'कैकेय की बेटी बडी मन्दबुद्धि की है जिसने प्रभु को सुख के अवसर पर दुःख दे दिया । यह बात निषाद ने लक्ष्मण जी से कही और निषाद के मन मे यह कल्पना थी कि श्री लक्ष्मण जी उनका समर्थन करेगे । पर लक्ष्मण जी ने समर्थन तो किया नही, बल्कि एक ऐसी बात कह दी जिसे सुन करके तो निषाद आश्चर्य मे मुह देखने लगे ! लक्ष्मण जी ने निषाद से कहा, "निषादराज जी यह जो आप कैकेई की आलोचना करते है, वह ठीक नही है '—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता ।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥ २/९१ ४

'कोई व्यक्ति किसी को सुख या दु.ख नही देता है । प्रत्येक व्यक्ति अपने ही कर्म का फल भोगता है ।' तो निषादराज का मुह आश्चर्य मे खुला रह गया कि आप कहते क्या है ? आपका तात्पर्य क्या है ? क्या भगवान राम से कोई ऐसा कर्म हो गया है जिसका फल उन्हे भोगना पड रहा है ? आपके कहने का अर्थ तो यही हुआ ! तो लक्ष्मण जी ने सङ्केत यह किया कि 'भई ! भगवान श्री राघवेन्द्र कुश-शैय्या पर जो सोये हुये है तो यह बताइए कि यह जो श्रीराम को देखकर आँखो मे आँसू और दु.ख है वह आपको हो रहा है या सोने वाले को हो रहा है ? श्री राम को हो रहा है, कि आपको हो रहा है ? बोले, 'वह तो मुझे हो रहा है ।' तो लक्ष्मण जी बोले—'फिर आपके कर्मो का परिणाम होगा, क्योकि दु.ख तो आपको हो रहा है उनको तो दुःख नही हो रहा है । और जब उनको दुःख नही हो रहा है तो बडी विचित्र सी बात है कि वे तो आनन्द की अनुभूति कर रहे है और हम और तुम सहानुभूति प्रगट करे !' सहानुभूति तो प्रगट की जाती है किसी दुःख के अवसर पर, लेकिन जहा आनन्द की बेला है वहा कैसी सहानुभूति ? भगवान श्री राघवेन्द्र ने सारी व्याख्या ही बदल दी । भगवान श्री राघवेन्द्र का दृष्टिकोण वह था जो उन्होंने कौशल्या अम्बा से कहा ।

श्री भरत जी ने गुरु वशिष्ठ को उलाहना दिया था कि मेरी मां ने जो दो वरदान मांगे थे कि भरत को राज्य और राम को वनवास, तो पहले मुझे राज्य मिलना था प्रभु को वनवास बाद में। यह क्रम उल्टा क्यों किया गया? इसका रहस्य यह है कि इस उल्टे क्रम के पीछे कैकेई का आग्रह तो था ही, कैकेई ने कहा कि न! मैंने वरदान चाहे जिस क्रम से मागा हो पर पहले राम को वन जाना है और बाद में भरत को राज्य मिलना है। यह कैकेई का तो हठ था ही, पर भगवान श्री राघवेन्द्र तो उसे और भी किसी भिन्न दृष्टि से देख रहे थे। श्री राघवेन्द्र तो वन जाने के लिये इतने उतावले थे कि वे जानते थे कि यदि ननिहाल से भरत लौट करके आ गये तो मै वन नही जा पाऊंगा। सारी योजना ही अस्त व्यस्त हो जावेगी। इसलिये भगवान श्री राघवेन्द्र ने अपने वनगमन को वनगमन न कह करके उसकी एक नयी व्याख्या कर दी। और व्याख्या करके भगवान राम ने कहा कि मुझे वन पहले जाना चाहिए और भरत को अयोध्या मे लौटकर बाद में आना चाहिए। तो भगवान राम का तर्क क्या था? बस वही जो उन्होने कौशल्या जी से कहा। जब कौशल्या ने श्रीराम से कहा कि चलकर स्नान कर लो, कुछ कन्द मूल फल खा लो, क्योंकि इसके पश्चात् तुम्हे अयोध्या के युवराज पद पर अभिषिक्त किया जाएगा तो भगवान राम ने मुस्कुरा कर कहा कि 'मा मुझे तो राजा बना दिया गया है! तुम तो मेरे युवराज होने की प्रसन्नता में इतनी आनन्दित हो, तो तुम्हारा आनन्द तो न जाने कितना बढ जाना चाहिए! क्योंकि युवराज के स्थान पर सीधे मुझे राजा का पद दे दिया गया।' कहा का राज्य? तो भगवान राम ने वनगमन का बिल्कुल शब्द ही बदल दिया। दूसरा व्यक्ति इसे देश निकाला कहेगा, वनगमन कहेगा, पर भगवान राम मां से कहते है :—

"पिता दीन्ह मोहि कानन राजू" २।५२/६

पिताजी ने राज्य का बंटवारा कर दिया है। अयोध्या का राज्य मेरे छोटे भाई भरत को और वन का राज्य मुझे। पिता जी ने यह बडा उपयुक्त बंटवारा किया। और इसलिए भगवान श्रीराम ने कहा कि मै वन पहले जाऊंगा, क्योकि बडे भाई होने के नाते राज्य पर

पहले मै बैठ जाऊ उसके वाद मेरे छोटे भाई को राज्य मिलना चाहिए। इस चतुराई से भगवान श्री राघवेन्द्र वन जाने के लिये प्रस्तुत है और इसको जगल का राज्य मानते हैं। यह वाक्य केवल भगवान राम का वाक्य ही नही है, यह केवल भगवान राम की एक घुमावदार भाषा नही है, वलिक सचमुच भगवान श्री राघवेन्द्र को जो प्रतीत हो रहा है वही भगवान श्री राघवेन्द्र ने इस वाक्य मे कहा। और भगवान श्रीराम ने अपने वनगमन को ठीक इसी दृष्टि से देखा। भगवान राम के वनगमन को इस दृष्टि से देखने का अभिप्राय क्या है ? वस्तुत महाराज श्री दशरथ जिस रामराज्य की कल्पना कर रहे थे, उस रामराज्य की कल्पना मे एक उतावलापन था। भगवान राम के चरित्र में आप यह भी देखेगे कि गोस्वामी जी ने अलग-अलग प्रसङ्गो मे भगवान राम के लिए अलग-अलग आसनो की कल्पना की है। अयोध्या मे भी भगवान श्रीराम आसन पर आसीन होते है। मिथिला मे भी भगवान राघवेन्द्र को बैठने के लिए आसन दिया जाता है। चित्रकूट मे भी भगवान श्रीराम का एक आसन वना हुआ है। और जव वे लका मे जाते है तो लङ्का में भी भगवान श्री राघवेन्द्र आसन पर आसीन होते है। पर ये जो चारो स्थानो मे आसन है, इनके नाम अलग-अलग है। भगवान श्रीराम अयोध्या मे जिस आसन पर बैठते है वह सिहासन है। जव वे लङ्का मे रावण का वध करके अयोध्या लौटे तो महाराज वशिष्ठ ने कहा .

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन ।
रामचंद्र बैठहिं सिघासन ॥ ७/९/५

तो अयोध्या मे भगवान श्रीराम का आसन जो है वह सिहासन है। और मिथिला मे भगवान श्रीराम जाते है तो मिथिला मे भगवान श्रीराम के बैठने के लिए महाराज श्री जनक ने जो आसन दिया उसका नाम गोस्वामी जी कहते है :—

बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए ।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए ॥
१।३२५॥१॥

दूल्हे का आसन—'वरासन'। और चित्रकूट मे यह तीसरा आसन है—वहा 'कुशासन' है :

बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई॥

जहां बैठि मुनिगन सहित नित सिय राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास प्रभु आगम निगम पुरान॥

तो अयोध्या का 'सिंहासन', मिथिला का 'वरासन', चित्रकूट का 'कुशासन' और लङ्का के आसन की तो क्या बात कही जाये? भगवान श्रीराम के लिए इन स्थानों पर तो ये आसन बनाए गये पर लङ्का के राजा ने भगवान राम को निमंत्रण तो दिया नही था, बिना निमंत्रण के गए हुए थे, तो मुस्कुरा करके उन्होने लक्ष्मण से कहा कि "लक्ष्मण! यदि कोई व्यक्ति निमंत्रण देता है तो जिसको निमंत्रण देता है, उसको बैठने के लिये आसन भी देता है। पर जब यहां बिना निमंत्रण के चल रहे है तो आसन भी साथ लेते चलो। तुम्ही बिछा देना, तब उस आसन पर वहा बैठ जायेगे।" तो लङ्का में भगवान राम का एक चौथा आसन है :—

इहां सुबेल सैल रघुबीरा।
उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी।
परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी॥
तहं तरु किसलय सुमन सुहाए।
लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥ ६।१०।३

और ये आसन कौन सा है?

ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला।
तेहिं आसन आसीन कृपाला॥ ६।१०।४

लक्ष्मण जी ने पहले पत्ते बिछाए, फूल की पंखुड़िया बिखेरी और सबके ऊपर मृगचर्म बिछा दिया और उसी पर भगवान राम आसीन हो गये। इस तरह से भगवान श्रीराम के चरित्र में यह जो चार आसनो की कल्पना की गयी, वह बडी साङ्केतिक है। क्या? भगवान

राम सिंहासन पर जो बैठते हैं, उसका क्रम है। वे सिंहासन पर सबमें अन्त मे बैठते है। महाराज दशरथ का उतावलापन यह था कि उन्होने श्रीराम को दूल्हे के रूप में वरासन पर बैठे देखा। और वरासन पर बैठे हुए राम को देखकर इतने आनन्दित हुए, इतने प्रसन्न हुए, कि अयोध्या मे आते ही उन्होंने कल्पना की कि अब भगवान राम के सिंहासन पर बैठने का अवसर आ गया है। पर नहीं, वरासन के बाद सिंहासन पर बैठने का अवसर नही आता, न आना चाहिए। वरासन के पश्चात् भगवान श्री राघवेन्द्र जब उन दोनो आसनों पर बैठ लेते तब अन्त मे जाकर अयोध्या के सिंहासन पर आसीन होते है। इनका प्रतीकात्मक तात्पर्य है। उन आसनों मे जो निहित सङ्केत है, वे बड़े महत्व के हैं। इनके द्वारा भगवान राघवेन्द्र के चरित्र के जो विविध पक्ष हैं, वे प्रगट होते हैं। आप कल्पना कीजिए कि महाराज दशरथ के कहने पर अगर भगवान राम सिंहासन पर बैठ जाते तो कैसा विचित्र, विडम्बनापूर्ण दृश्य होता ? क्या ? कि एक ओर अयोध्या के राजसिंहासन पर तो भगवान राम बैठे होते, पर दूसरी ओर लङ्का के सिंहासन पर रावण बैठा हुआ होता ! विश्व मे दो सिंहासन, एक सिंहासन पर राम और दूसरे सिंहासन पर रावण। अगर दोनो का सिंहासन अन्तःकरण मे लगा रहे तो वह रामराज्य नही है। जब रावण का सिंहासन मिटे और केवल श्रीराम का सिंहासन बचे, तब रामराज्य होता है। महाराज श्री दशरथ के चरित्र मे समझौते की वृत्ति है। इधर अयोध्या के सिंहासन पर महाराज दशरथ बैठते थे, उधर लङ्का के सिंहासन पर रावण बैठता था। मानो दशमुख और दशरथ दोनो अलग-अलग सिंहासनो पर बैठे हुए हैं।

अब इसको थोडा सा गहराई से आध्यात्मिक अर्थों मे देखे तो अयोध्या बुद्धि की भूमि है, और लङ्का अहङ्कार की भूमि है। ये चारो भूमि जो है, जिन चारो का नाम मैंने लिया, अगर आध्यात्मिक अर्थों मे देखें तो ये अन्तःकरण की चार भूमि हैं। मन की मिथिला, बुद्धि की अयोध्या, चित्त की चित्रकूट और अहङ्कार की लङ्का। एक स्थिति ऐसी थी, जब अयोध्या में महाराज दशरथ का सिंहासन था और लङ्का में रावण का सिंहासन था। तो भाई ! ये तो हमारे और आपके

जीवन का बिलकुल यथार्थ चित्र है, वास्तविक चित्र है। अगर हम और आप अपने जीवन की ओर देखें, अपने अन्तःकरण की ओर देखे, तो यही सत्य जो रामायण का सत्य है, प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में दिखायी देगा। इसलिए गोस्वामी जी से जब प्रभु ने पूछ दिया कि ये तुमने इतने सुन्दर-सुन्दर मेरे रूप लिखे, चित्र चित्रित किए, झाँकिया अङ्कित की, पर लङ्का के रूप में तुम्हें इतना आकर्षण क्यों लगा कि तुमने यह बात जोड दी ? कि—

"धन्य ते नर एहि ध्यान जे रहत सदा लयलीन ॥"
६।११॥(क)

"वे प्राणी धन्य है जो भगवान के इस रूप में डूबे रहते है।" तुमने मिथिला, अयोध्या, चित्रकूट के बारे मे यह बात न लिख करके लङ्का के साथ ये वाक्य क्यों लिखा ? तुलसीदास जी ने कहा कि महाराज मैने इसलिए लिखा कि अगर अयोध्या, मिथिला और चित्रकट की झाकियों का रूप अपने हृदय में ले आना चाहे तो पहले हृदय को अयोध्या बनाना पड़ेगा। अगर दूल्हे के रूप मे आपको हृदय में लाना चाहे तो मन की मिथिला मे वैसे रस की सृष्टि करनी होगी; अगर चित्त के चित्रकूट में आपको ले आना चाहें तो चित्त को उतना अचल बनाना होगा। तो महाराज ! अयोध्या, मिथिला और चित्रकूट की भूमि जो है, पहले अन्तःकरण मे बनानी होगी, तब आप आयेंगे। पर जब मुझे यह पता चला कि आप लंका मे भी चले आते है तो मै प्रसन्न हो गया कि लङ्का मुझे बनानी नही है ! यहा तो लङ्का बनी बनायी है ! लङ्का मे भी आ सकते है, इससे बढ कर के हमारे लिये प्रेरणा की कोई और बात नही है। तो सत्य क्या है ? जीवन का सत्य यही है। हमारी बुद्धि संचालित हो रही है दशरथ के द्वारा और हमारा अहंकार जो सचालित हो रहा है वह है, रावण के द्वारा। एक साथ जीवन में यही विरोधाभास दिखाई देता है। और इसका अभिप्राय है कि बुद्धि से तो हर व्यक्ति अच्छी बात सुनता है, समझता है, ग्रहण करता है और अच्छे विचार उसकी बुद्धि में आते है, ये दशरथ का सिहासन है। पर दूसरी ओर लङ्का के सिहासन पर ये

जो हमारा अहम् है, बल्कि वास्तविकता तो यह है कि मख्य रूप से हम बुद्धि के द्वारा जितने संचालित नही है उतने अहम् के द्वारा है। और हमारे अहम् में जो साथी है, हमारे अहम् में जो प्रेरक तत्त्व है। वह तो वस्तुतः हमारे जीवन का जो मोह है, वही है। तो ऐसी स्थिति मे महाराज श्री दशरथ की जो ये कल्पना थी, उन्होंने इस प्रकार का जो समझौता कर लिया था, वैसा समझौता हम लोगों के जीवन में पाया जाता है। और ये समझौता यही है कि, एक ओर बुद्धि में कुछ सद्गुण और श्रेष्ठ कर्म, और दूसरी ओर अहंकार मे मोह की सृष्टि और उसके द्वारा जीवन का संचालन ! तो भई, रामराज्य यह नही है।

दशमुख राज्य के साथ दशरथ राज्य तो चल सकता है पर दश-मुख राज्य के साथ रामराज्य नही चल सकता। रामराज्य से पहले श्रीराम को दो अन्य आसनो पर बैठना होगा। और उन दोनो आसनो पर बैठने के पश्चात् तब कही जा करके भगवान श्री राघवेन्द्र उस भूमिका को स्वीकार करेगे। आप देखिए, यहा गोस्वामी जी की काव्य-मयी भाषा क्या है ? भगवान राम जब लंका के सिंहासन पर विभी-षण को बिठा देते है, तब फिर लौट करके अयोध्या के सिंहासन पर स्वयं बैठते है। दो बातें सकेत के रूप मे ध्यान में आप रखिये। एक तो अयोध्या के सिंहासन पर स्वयं बैठने के पहले भगवान राघवेन्द्र ने दूसरे को सिंहासन पर बैठाया, और जिसको सिंहासन पर बैठाया वह कोन है ? विभीषण जी ! लका के सिंहासन पर विभीषण ! और ये विभीषण कौन है ? आप बहुत वर्षों से सुन रहे है। 'विनय पत्रिका' भी आपने पढी होगी। गोस्वामी जी कहते है कि विभीषण वस्तुत हमारे और आपके जीवन मे जो 'जीव तत्त्व' है, वही विभीषण है —

"जीव भवदंध्रि सेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिन्ता"

तो 'जीव' ही विभीषण है। और इसका अभिप्राय क्या ? कि ईश्वर स्वयं सिंहासन पर बैठने के लिए नही आया, बल्कि वह तो, यह जो जीव का खोया हुआ सिंहासन है उस पर जीव को प्रतिष्ठा-

पित करने के लिए आया। जिस पर जीव का राज्य होना चाहिए था उस सिंहासन पर मोह का राज्य था! भगवान श्री राघवेन्द्र जब जीव के जीवन के मोह का ध्वंस कर देते है और उस जीव को सिंहासन पर बैठा करके जीव का जो स्वरूप है, जीव का जो राज्य है, उसे लौटा देते है तब भगवान राघवेन्द्र लोगो का अनुरोध स्वीकार करके अयोध्या के सिंहासन पर बैठते है। और इसका अभिप्राय यह है कि अगर जीव के ऊपर मोह का शासन हो, मोह के द्वारा जीव बेचारा संचालित हो, और ऐसी स्थिति मे ईश्वर सिंहासन पर बैठा हुआ हो, तो इससे बढ़कर के ईश्वर के सिंहासन पर कोई व्यंग्य नही होगा! कोई विडम्बना नही होगी!

गोस्वामी जी इसीलिए भगवान से कहते है, प्रभु! जीवन की समस्या यह है कि मैने बहुत पढ़ा, मैने बहुत सुना, कि यह जो हृदय है वह ईश्वर का निवास स्थान है। लेकिन महाराज! जब मै अपनी ओर लौट करके देखता हू तो मुझे दिखायी देता है :—

"मम हृदय भवन प्रभु तोरा।"

लेकिन :—

"तहाँ बसे आइ बहु चोरा॥"

"मेरा हृदय जो है वह तो आपका निवास स्थान है पर उसमें आकर के चोरों ने डेरा डाल दिया है।" तो भगवान ने कहा—"चोरों को निकालकर बाहर करो, निकालते क्यो नही हो?" तो गोस्वामी जी कहने लगे कि—

"मै एक अमित बटमारा।
मानहि नहिं कहा हमारा॥"

"महाराज! हम अकेले है और चोर डाकू अनेक है, भला ये हमारी बात सुनेगे!" तो भगवान ने मीठा व्यंग किया। भगवान ने मुस्कुराकर कहा कि—"अच्छा तुम यह कहते हो कि घर मेरा है! तुम्हारा तो नहीं है?" बोले—"नहीं, मेरा नही है।" तो प्रभु ने कहा कि—"जब घर मेरा है तो फिर मुझे चिन्ता होनी चाहिए! तुम्हें

क्यों चिन्ता है ? अरे ! चिन्ता तो मैं करूं कि मेरे घर पर किसने कब्जा कर लिया है ! गोस्वामी जी ने कहा—"महाराज ! मुझे बहुत बड़ी चिन्ता आपकी ही तो है !" क्या ? बोले—"महाराज !—

चिन्ता मोहि अमित अपारा।
अपजस नहिं होइ तुम्हारा।।

"आपको कही कलंक न लग जाय।" क्यो ? बोले—"महाराज ! ससार मे एक समाचार फैल रहा है।" क्या ?—तो बोले :—

कह तुलसिदास सुनु रामा।
लूटहिं तस्कर तव धामा।।

"महाराज ! चोर आपका घर लूट रहे है ! तो प्रभु ! यह आपके लिये कितनी लज्जा की बात है ? अरे ! इससे बढकर भी क्या आपके लिये कोई संकोच की बात हो सकती है, कि आपके घर पर चोर डाकू अधिकार कर ले और आप धनुप बाण लेकर के चोर-डाकुओ को न निकाल सके ! इसलिये महाराज ! मै आपके स्वार्थ के लिये ही आपसे प्रार्थना कर रहा हू, कि मेरे अन्त.करण से पहले इन चोर-डाकुओ को निकालिये और आ करके अपने घर मे विराजमान होइए। इससे आपकी कीर्ति जो है अक्षुण्ण रहेगी, नही तो, नही रहेगी।" और इसका सीधा सा तात्पर्य यही है कि पहले अन्त करण से मोह का साम्राज्य मिटे तब जाकर अन्त मे रामराज्य स्थापित होगा।

यह क्रम है, इस क्रम की दृष्टि से आप विचार करके देखें तो रामराज्य कब होगा ? अयोध्या के राजसिंहासन पर, अन्तःकरण के उस बुद्धि लोक पर, भगवान का सच्चे अर्थो मे शासन कब माना जायेगा ? जब-दो स्थानों मे चित्रकूट, और चित्रकूट से भी अधिक लङ्का में, भगवान राम आसीन हो चुकेगे। चित्रकूट मे तो भगवान राम और श्री भरत का मिलन होता है। इसके पश्चात् भगवान राम की जो चित्रकूट से लङ्का तक की यात्रा है, यह यात्रा क्या है ? यह यात्रा वही है जो भगवान श्री राघवेन्द्र ने कौशल्या अम्बा से कहा था। भग-

वान श्री राघवेन्द्र चित्रकूट में जाकर के चित्त की अचलता में श्री भरत को प्रेम रस से सरावोर करते हुए उन्हें कर्तव्य की प्रेरणा देते है कि तुम अयोध्या लौट करके अयोध्या के राज्य का संचालन करो ! और श्री भरत अयोध्या मे कर्तव्य कर्म का निर्वाह करते हुये, अयोध्या के लोगों के चरित्र मे जो कमियाँ आ गयी थी उन कमियों को दूर करते है। पर इतना ही नही, भगवान श्रीराम की यात्रा तो वड़ी ही लम्वी है। और इस यात्रा की विशेषता यही है कि अन्त मे भगवान श्री राघवेन्द्र लंका के रूप मे स्थित अहंकार की भूमि मे भी बैठते है। अहंकार की भूमि मे पैठकर के भगवान श्रीराम स्वयं लक्ष्मण के द्वारा ले आये आसन पर बैठते है, और यही बैठकर के भगवान श्री राघवेन्द्र रावण को चुनौती देते है, और संघर्ष करने के पश्चात् जब लौटकर अयोध्या आते है तव रामराज्य वनता है। इसलिये भगवान श्री राघवेन्द्र यह कहते है कि "माँ ! तुमको प्रसन्न होना चाहिए कि पिताजी अभी तक मुझे जो पद दे रहे थे, वह तो केवल शोभा का पद था। युवराज पद पर, अयोध्या के सिंहासन पर, मेरा बैठना केवल शोभा की वस्तु हो जाती।" वहाँ जो भगवान राम ने कौशल्या अम्वा से वात कही, वस—वह सूत्र है, भगवान राम के व्यक्तित्त्व और चरित्र को समझने के लिये। और वह क्या है? भगवान श्री राघवेन्द्र ने जव यह कहा कि—"पिता जी ने मुझे जगल का राज्य दिया है" तो कौशल्या अम्वा चौक पड़ी। उन्होने कहा—"विश्व के इतिहास में अभी तक तो मैने सदा यही सुना है कि जो राज्य की राजधानी होती है, वही पर राजा सिंहासन पर वैठता है। अव मै पहली वार यह सुन रही हूं कि तुम कह रहे हो कि पिता जी ने मुझे जंगल का राज्य दिया है? राम ! कही जंगल में भी कोई राज्य होता है? क्या राजा जंगल में रहा करता है?" तो भगवान श्री राघवेन्द्र ने कहा—"माँ ! यही भूल, जो आज तक होती रही, पहली वार वह भूल पिताजी ने सँभालने की चेष्टा की है।" और वह भूल क्या है? तो भगवान राम का अगला वाक्य आप पढ़ेगे—भगवान राम कहते है:—

"पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।"

और अगला वाक्य क्या है—

"जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।"

"माँ! सत्य तो यह है कि यहाँ पर मैं सिंहासन पर बैठ कर के शोभा की वस्तु बन जाता। पर जहाँ पर सचमुच मेरी आवश्यकता है वह 'नगर' नहीं है, अयोध्या का सिंहासन नहीं है, मेरी आवश्यकता तो 'वन' मे अधिक है।" और यही बात कौशल्या अम्बा को मा जानकी ने उलाहने मे कही थी। श्रीराम ने जब वन जाने का निश्चय किया तो कौशल्या अम्बा ने श्रीराम को तो वन जाने का आदेश दे दिया, पर श्रीसीता जी के रुकने का अनुरोध करते हुये उन्होंने श्रीराम से यह कहा कि,—"मेरी पुत्री जो है, वह वन मे रहने योग्य नहीं है" :—

> बन हित कोल किरात किशोरी।
> रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी॥
> पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ।
> तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥
> कै तापस तिय कानन जोगू।
> जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥ २।५९।३

कौशल्या अम्बा के मुख से वाक्य क्या निकला? बोली—"पत्थर और पत्थर के कीड़े की तरह जिनका कठिन स्वभाव है, वही वन के कष्टों में रहने योग्य है।" इसका अर्थ क्या है? कि यह मान लिया गया कि राजा सुख मे रहने योग्य है, कष्टो मे रहने योग्य नहीं है। राजा 'नगर' मे रह करके सुख के साम्राज्य मे रहे, और जो बेचारे दीन-हीन है, वे ही केवल 'वन' मे कष्ट उठा सकते है, उठावे। इसलिये उसमें कौशल्या अम्बा के मुह से एक शब्द और निकला कि यह मेरी पुत्रवधू जो है :—

"बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥" २।५९

उन्होने जगल की तुलना विप वाटिका से की है। उन्होने कहा कि यह जगल तो, जहर की जैसी कोई वाटिका लगी हुयी हो, जिसके चारो ओर जहर ही जहर लगा हुआ हो, ऐसा है। और मेरी पुत्रवधू जो है वह तो अमृत की जड़ी है। तो जो अमृत की जडी है उसकी

शोभा तो जहाँ अमृत के वृक्ष लगे हों, सुन्दर वृक्ष लगे हुये हों, वहाँ है। अमृत की वाटिका में अमृत के रहने की शोभा है, और जहाँ पर विष की वाटिका है वहाँ पर अमृत के रहने की कोई शोभा नहीं है। इसलिये तुम सीता को वन में जाने के लिये मत कहो। श्रीसीता जी ने प्रभु की ओर देखा ! प्रभु संकोच में है ! माँ की बात का वह भी समर्थन करते है। तो तुरन्त किशोरी जी ने कहा कि, "महाराज ! आपने माँ के शब्दों को सुना और जो अर्थ आपने अपने सन्दर्भ में किया वही मैं करती हूं।" क्या ? कि जो व्यक्ति भूख रहित है उसको भोजन कराना एक अलग बात है, और जो सचमुच भूखा है उसे भोजन देना तो भोजन की सबसे बड़ी सार्थकता है। क्योंकि, इसके बिना वह भूखा मर जाता ! तो श्री किशोरी जी का अभिप्राय था कि, "माँ ! आप जो कह रही है कि अमृत की जड़ी जो है वह अमृत की वाटिका में शोभा देगी, यह सत्य नही है। अमृत की वाटिका में अमृत की जड़ी जो है वह केवल शोभा की ही वस्तु होगी, पर विष की वाटिका में, जहाँ पर विष ही विष है, वहाँ पर अमृत की सबसे अधिक आवश्यकता है। क्योंकि जहाँ पर विष होगा, वहाँ पर सबसे अधिक विष की ज्वाला होगी, और जहाँ पर ज्वाला होगी, वही उसे कम करने के लिये अमृत की आवश्यकता होगी ! तो अगर वन मे प्रभु की आवश्यकता है तो मेरी भी उनसे कम आवश्यकता नहीं है।" और इस तरह से मानों भगवान राघवेन्द्र और जनकनन्दिनी सीता दोनों ही इस सत्य का अनुभव करते हैं कि यह वन यात्रा देश निकाला नहीं है, यह वनयात्रा माता की आज्ञा नहीं है, यह वनयात्रा तो वस्तुतः नये रामराज्य का निर्माण है। भगवान राघवेन्द्र यह मान करके चलते हैं।

अब, यह एक क्रम है। भगवान श्री राघवेन्द्र पहले जो मन की मिथिला है वहाँ जाकर श्री जनक जैसे ज्ञानी के आसन पर बैठते है अतः वहाँ ज्ञान का आसन है। अयोध्या मे जो सिंहासन है वह धर्म का आसन है। चित्रकूट का जो आसन है उसमें श्रीसीता जी ने स्वयं अपने हाथों से वेदी बनाई थी इसलिये वह भक्ति का आसन है। और लङ्का में मृगचर्म का जो आसन है, वह चंचल मन का आसन है।

ग्रौर इन समस्त ग्रासनों के पश्चात् लोगों के चरित्र का निर्माण करते हुये भगवान श्री राघवेन्द्र, रामराज्य का निर्माण करने जा रहे है। तो भगवान श्री राघवेन्द्र कहते हैं कि हम दोनों भाइयों मे वँटवारा हो गया है राज्य का। ग्रयोध्या का राज्य भरत का ग्रौर वन का राज्य मेरा। तो भई! यह भगवान राम की यात्रा जो है वह क्या है? समाज में परिवर्तन की यात्रा है। जीव के ग्रन्त:करण मे परिवर्तन की यात्रा है। ग्रौर इस यात्रा मे भगवान श्री राघवेन्द्र के राज्य की सीमा कौन सी है? मुख्य प्रश्न यही है कि महाराज दशरथ का राज्य कहाँ समाप्त हुग्रा ग्रौर रामराज्य कहाँ से शुरू हुग्रा? तो इसका एक ही उत्तर है। बस, यही गङ्गा का किनारा जो है वही दोनों राज्यों की सीमा है। जहाँ से सुमन्त जी लौट चलें, वही मे दशरथ राज्य समाप्त हो गया। ग्रौर जहाँ पर भगवान राम गङ्गा के किनारे ग्राकर के खडे हुए वही से रामराज्य प्रारम्भ हो गया। ग्रौर इस रामराज्य का प्रथम नागरिक कौन है? तो यह केवट जो है यही रामराज्य का सबसे पहिला नागरिक है। भगवान श्री राघवेन्द्र ग्रपने राज्य में ऐसा ही नागरिक चाहते है। भगवान राम ने लक्ष्मण मे कहा—"बस, लक्ष्मण, मेरा चुनाव यही है कि यही व्यक्ति जो है मेरे राज्य का प्रथम नागरिक है।" यह गङ्गा का तट जो है इन दोनो की विभाजक रेखा है। गंगा जो है यह भक्ति की धारा है। गंगा को रामचरितमानस में कथा के सन्दर्भ में भक्ति के रूप में बताया गया है—"राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।" ग्रौर सीता जी के चरित्र के सन्दर्भ मे भी गंगा जी से उनकी तुलना की गई है। तो गंगा जो है वह "भक्तिमयी" है, ग्रौर भक्तिमयी गंगा के किनारे खड़ा हुग्रा यह केवट ही रामराज्य का प्रथम नागरिक है। केवट से भगवान श्री राम ने सारा वार्तालाप किया तो भगवान श्री राघवेन्द्र ने श्री लक्ष्मण जी ग्रौर श्री सीता जी की ग्रोर देखकर हसते हुये यही कहा कि, हम लोगो ने जिस उद्देश्य से वन यात्रा की उसका तो श्री गणेश हो गया। ग्रौर कितनी प्रसन्नता की बात है कि हम लोगो के राज्य मे ऐसे नागरिक है! इसका ग्रभिप्राय है कि भई! रामराज्य की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि संसार में ग्रधिकाश राज्य जो हे वे लोभ ग्रौर भय के द्वारा संचालित होते है। या तो लोभ या भय, यही मनुष्य को

चलाने के दो मुख्य साधन है। और इनका बड़ा महत्व है अपने स्थान पर। पर रामराज्य का सर्वोच्च नागरिक वह है जहां पर लोभ और भय की वृत्ति पूरी तरह मिट जाय। इसलिये रामराज्य में एक स्थिति का वर्णन किया गया है जहां पर किसी व्यक्ति के अन्तःकरण मे लोभ की वृत्ति और भय की वृत्ति नही रह गयी। भगवान राम जब अयोध्या के सिंहासन पर बैठे और अयोध्या के नागरिको को उन्होंने निमन्त्रण दिया, तो निमन्त्रण दे करके यही वाक्य भाषण के प्रारम्भ में भगवान राम ने कहा—"मित्रो मेरे राज्य की सच्ची प्रजा वह है जो मेरा अनुशासन माने और मेरा अनुशासन मान करके मेरे अनुशासन मे रहे।" तो प्रजा ने कहा, बताइए—"अनुशासन का पालन हम लोग क्या करे ?" तो भगवान श्री राघवेन्द्र कहते है :—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई ।
मम अनुशासन मानै जोई ॥ ७।४२।५

और मेरा अनुशासन क्या है ? भगवान राम ने कहा :—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई ।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥ ७।४२।६

"अगर, मेरे जीवन में, मेरी वाणी मे, मेरे चरित्र मे, कही नीति के विरुद्ध आचरण हो तो आप लोग भय छोड करके मुझे रोक दीजिएगा।" भय छोड़ करके आप रोक देंगे तो हम समझेंगे आप अनुशासन में है, और रोकने मे आप डरेंगे तो हम समझ लेंगे आप अनुशासनविहीन है। भगवान राम की अनुशासन की परिभाषा ही उल्टी है। अनुशासन में भगवान राम कहते है, तुम बोलो ! अगर मुझमे कोई दोष समझते हो तो उसकी आलोचना करो ! तुम निर्भय हो जाओ ! तुम्हारे अन्त करण का सचालन विवेक के द्वारा हो, लोभ और भय के द्वारा नही ! और जिन वस्तुओ को भगवान राम चाहते है वह सबसे पहले किसमें आयी, किसके चरित्र मे आयी ? यह केवट ही वह पहला पात्र है कि जिसमे न लोभ है न भय है। भगवान श्री राघवेन्द्र को तो ऐसा लगा कि अरे, इससे बढकरके तो

कोई व्यक्ति मिला ही नही, जो इतना लोभ शून्य हो और भय शून्य हो। इतना ही नही, मैं आपसे यह भी कहूंगा कि अगर आप ध्यान से पढेंगे तो आगे चल करके देखेगे कि इसी का विस्तार होता गया। विस्तार क्या ? भगवान श्री राघवेन्द्र और रावण के युद्ध के प्रारम्भ मे एक वडी मीठी वात आती है। जव लंका का युद्ध हुआ और भगवान राम, रावण से लडने के लिए चले तो विभीपण ने चरण पकड़ लिए, महाराज ! इतने शक्तिशाली शत्रु को विना रथ के, विना पादत्राण के आप कैसे जीतिएगा ? तो भगवान ने कहा :—

"जेहि जय होइ सो स्पंदन आना।" ६।७६।४

जव भगवान ने धर्मरथ की व्याख्या की तो सव चुप हो गये, मान गये, लेकिन वडा विचित्र प्रसङ्ग आता है। तीसरे दिन जव युद्ध प्रारम्भ हुआ तो स्वर्ग से इन्द्र ने मातलि को रथ दे करके भेजा कि रथ ले करके जाओ और इस रथ पर श्रीराम से वैठने का अनुरोध करो कि रावण के विरुद्ध भगवान राम इसी रथ पर वैठ कर युद्ध करे। मातलि रथ ले करके आया और भगवान राम ने अनुरोध स्वीकार कर लिया, वैठ करके गये और लड़े। पढ करके वडा आश्चर्य होता है कि एक दिन पहले भी तो रथ भेजा जा सकता था ! विभीपण वेचारे इतने जो संकट में पड़े या मन में संशय हुआ, वह तो न होता ! तो एक दिन वाद इन्द्र ने रथ क्यों भेजा ? इन्द्र के चरित्र का यह व्यंगात्मक पक्ष था। क्या ? इन्द्र रथ तो भेजना चाहता था। देवताओ ने कहा भी कि आप रथ क्यो नही भेज रहे हैं ! पर इन्द्र वोले कि,—"कम से कम वे कहलवाये तो कि रथ चाहिए !" वे कहलवाते क्यो नही ! यह जो अहंकारी व्यक्ति होता है, जिसमे अपनी श्रेष्ठता का भाव होता है, वह चाहता है कि दूसरा व्यक्ति कहता क्यो नही ? देवताओ ने कहा कि शायद वे कहलवाना न पसंद करे। तो इन्द्र ने तर्क दिया, कि केवट से नाव माग सकते थे और मुझसे रथ नही माग सकते ! यह उनका कैसा विचित्र व्यवहार है ? साधारण से व्यक्ति को इतना महत्व दिया कि उससे नौका मांगते है, और कहते है कि तुम्हारी नौका के विना हम पार नही हो सकते है। और उसके पश्चात् जैसा जैसा वह कहता है, वैसा वैसा करते हैं !

तो फिर मुझसे रथ क्यों नही मांगते ? पर भगवान राघवेन्द्र मानते है कि केवट जितना मेरे निकट है, इन्द्र को उतनी निकटता का सौभाग्य प्राप्त नही है। इन्द्र ने दूसरे दिन रथ इसलिए भेज दिया कि अगर रथ नही भी भेजेंगे तो वे लड़ाई में जीत ही जायेंगे ! मेरा नाम तो होगा ही नही, तो चलो कम से कम आज भेज दे जिससे यह तो रहेगा ही कि इन्द्र के रथ पर बैठकर श्री राम ने युद्ध जीता। तो इन्द्र के अपने चरित्र की यह जो दुर्बलता है, स्वर्ग में रह करके वहाँ पर प्रगट होती है। और केवट के चरित्र में कितनी निर्भयता और कितना निर्लोभ ? आप देखिए ! केवट जब भगवान राम से अपनी बात करने लगा तो यह भी प्रश्न उठ सकता था कि जब अभी इतनी चिख-चिख कर रहा है तो पार उतारने के बाद न जाने क्या माँग बैठे ? पर, उसने बिश्वास दिला दिया। आप देखिए, ईश्वर खड़ा है ! जिस ईश्वर से मांगने के लिये संसार के जीव व्यग्र रहते है ! पर केवट गंगा के किनारे खड़ा है और भगवान राम से कहता है, आप विश्वास कीजिए—

"पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौ।" २।१००

"मुझे कुछ नहीं चाहिए !" और इतना कहा ही नहीं, सचमुच उसने यही किया भी ! जब पार उतराई के बाद प्रभु ने उतराई देना चाहा तो केवट ने यही कहा कि महाराज ! आपने मुझे जितना बड़ा बना दिया है अब दे करके छोटा मत बनाइये !" भगवान ने कहा— "क्यों?" केवट ने कहा—महाराज ! "संसार के सभी लोग मुझे दरिद्र कहते है, दीन-हीन कहते है, तुच्छ कहते हैं। तो आप अगर गंगा के किनारे आते और खड़े हो करके कहते कि तू तो बड़ा दरिद्र है ! जो मांगना हो मांग ले ! तो मैं समझ लेता कि, मैं दरिद्र हूं और आप देने वाले है ? लेकिन, जब आप गंगा के किनारे खड़े हुए और आपने आ करके कहा कि केवट मुझे, नाव चाहिए। तो प्रभु ! मै गद्‌गद् हो गया। विह्वल हो गया कि अरे ! मै दरिद्र कैसे हूं ? जब, सारे संसार को देने वाला ही मुझसे मांग रहा है तो मैं दरिद्र नही हूं ! मुझसे बड़ा कोई नही हो सकता।" तो महाराज ! मुझको आपने इतना सम्मान दे दिया नाव मांग करके। और अब लेने देने

की बात कर रहे है ? केवट गद्गद् कण्ठ से कह उठता है,—"आजु नाथ मै काहू न पावा।" और निर्भय इतना कि—रामायण में ये लक्ष्मण जी जो है, ये काल के प्रतीक है। लक्ष्मण जी से बढ करके डराने वाला कोई दूसरा नही। लेकिन रामायण मे लक्ष्मण जी यदि किसी के सामने परास्त होते है, तो वह निषाद है ! केवट की बात सुनकर लक्ष्मण जी की भौहे जरा चढी। ये काल की दृष्टि है न ! भय के मारे सुग्रीव तो कापने लगे थे कि लक्ष्मण जी आये हुए है। पर वही लक्ष्मण जी, केवट के सामने है और उन्ही लक्ष्मण जी की दृष्टि टेढ़ी हो गयी, भौहे टेढी हो गयी, लेकिन केवट को हंसी आ गयी ! उसने भगवान राम का ध्यान आकृष्ट किया। बोला,— "यह न समझिएगा—

"बरु तीर मारहुं लखनु पै"— २।१००

अरे ! ये क्या कर लेगे ? बहुत करेगे तो बाण चला के मार देगे ! "बरु तीर मारहु लखन पै"—परन्तु, मुझे इनका भी भय नही है !" तो जिसको ईश्वर से कुछ मागने का लोभ नही और काल का भी भय नही, उससे बढ करके लोभ और भय रहित पात्र और कौन हो सकता है? भगवान श्री राघवेन्द्र कहते है,—"लक्ष्मण, ! इसी लिए तो सुमन्त्र को मैने लौटा दिया, कि भई ! पिताजी के राज्य का जो प्रतिनिधि है अब वह लोट जाय। अब तो जो हमारे राज्य के नागरिक है उनके और हमारे बीच के सम्बन्ध दिखायी देते रहे।" तो केवट प्रसङ्ग का इस सन्दर्भ मे भी अपना अर्थ है। उसके जो सन्दर्भ है और उनमे जो दिव्य रहस्य है भक्ति, ज्ञान, और कर्म के, उनकी चर्चा हम कल से प्रारम्भ करेगे। आज इतना ही।

"। बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय।"

श्री रामः शरणं मम

२

तो आइए गंगा के किनारे मनः शरीर से चलें, और वहां एक हठीले प्रेमी और भगवान श्री राघवेन्द्र के बीच जो अनोखा संवाद चल रहा है, उस संवाद की पृष्ठभूमि और उसका रहस्य हृदयङ्गम करने की चेष्टा करें।

केवट का प्रसङ्ग यद्यपि मानस में बडा छोटा सा प्रसङ्ग है, पर इसमें कोई संदेह नही कि यह सर्वथा अनोखा प्रसंग है, अद्भुत प्रसङ्ग है। और उसकी विलक्षणता यह है कि केवट जैसा हर दृष्टि से साधारण प्रतीत होने वाला व्यक्ति, वर्ण की दृष्टि से जिसका जन्म नीच वर्ण, मे हुआ था, जो समाज की दृष्टि से उपेक्षा का पात्र था, ऐसा केवट भगवान श्री राघवेन्द्र को इतना प्रिय प्रतीत हुआ कि भगवान राम उसकी वाणी पर उन्मुक्त भाव से हंसते है, और आनन्दित होते है। तो केवट की भूमिका के सन्दर्भ में कल जो वात आपके सामने रखी गयी थी, उसे मैं आज और भी थोड़ा स्पष्ट कर दूँ। कल यह वात कही गयी थी कि भगवान श्री राम की वनयात्रा वस्तुतः रामराज्य की स्थापना का वास्तविक प्रयत्न है, क्योंकि भगवान श्री राघवेन्द्र यह मानते हैं कि पिताजी ने उन्हें वन का राज्य दिया है जहां पर सवसे अधिक उनकी आवश्यकता है, यह प्रभु की धारणा है। तो सचमुच भगवान श्री राघवेन्द्र के वन-गमन की सवसे वड़ी सार्थकता यदि कही दिखाई देती है, तो केवट प्रसङ्ग में दिखाई देती है। दो दृष्टियों से आप इस पर विचार करें। एक तो रामराज्य का जो

लक्षण प्रस्तुत किया गया है या रामराज्य के नागरिको का जो वर्णन गोस्वामी जी ने उत्तरकाण्ड में लिखा है, अगर उस कसौटी पर किसी पात्र को आप देखें और विशेष रूप से केवट को कस करके देखें, तो आपको यही प्रतीत होगा कि भगवान श्री राघवेन्द्र अपने आदर्श राज्य के नागरिक की जो सर्वोच्च-कल्पना करते है वह केवट मे विद्यमान है। रामराज्य की विलक्षणता का जब गोस्वामीजी वर्णन करते हैं तो इस बात पर बड़ा जोर देते है कि रामराज्य में न तो कोई व्यक्ति दरिद्र था, न तो कोई व्यक्ति दीन था और न ही कोई व्यक्ति दुःखी था।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥

तो यह "नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना" शब्द भी बड़े साकेतिक महत्व का है। और उसकी समग्र परिणति केवट के चरित्र में आपको मिलेगी। यहा पर तीनो शब्द जो कहे है, वैसे हम यदि साधारण दृष्टि से देखे तो लगता है जैसे कि ये तीनों शब्द समानार्थी हैं। विशेष रूप से "दरिद्र" और "दीन" शब्द सर्वथा एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप मे माने जाते हैं। उसके साथ-साथ दुःखी शब्द को और जोड दिया गया है। "नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना" तो दुःख के सन्दर्भ मे रामचरितमानस के अन्त मे कागभुशुण्डि और गरुड़ के बीच मे जो वार्तालाप होता है, उसमें गरुड़ जी ने कागभुशुण्डि जी से सात प्रश्न किए। उन सात प्रश्नो मे एक प्रश्न यह था कि संसार में सबसे बड़ा दुख क्या है ? तो सबसे बड़े दुःख की व्याख्या भी दरिद्रता के रूप मे ही की गयी। कागभुशुण्डि जी कहते है :—

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।
संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥

दरिद्रता से बढकर कोई दुःख नही है। तो इस दृष्टि से अगर दुःख का तात्पर्य दरिद्रता ले ले तो ऐसा लगता है कि जैसे एक ही शब्द की बार-बार पुनरावृत्ति की गई है। लेकिन जब यह शब्द कहा गया कि रामराज्य मे कोई दरिद्र नही था तो फिर यह कहने की क्या

आवश्यकता थी कि रामराज्य में कोई व्यक्ति दुःखी नही था, या फिर रामराज्य में कोई व्यक्ति दीन नही था ? क्योंकि साहित्य का यह नियम है कि जहा थोड़े शब्दों से काम चल सके, वहां बहुत से शब्दों का प्रयोग अनपेक्षित है, अनावश्यक है। किन्तु गोस्वामी जी जब इन तीन शब्दों का अलग-अलग प्रयोग करते है, दरिद्रता, दीनता और दुःख का तो इसका अभिप्राय यही है, वस्तुतः इन तीनों में भी किसी न किसी प्रकार का सूक्ष्म अन्तर है। और वह यह कि दरिद्रता जो है वह व्यक्ति का वस्तुगत अभाव है। अगर किसी व्यक्ति के पास जीवनयापन की भी सुविधा न हो, पेट पालने की भी सुविधा न हो तो ऐसी परिस्थिति में वस्तुओं के अभाव में यह जो उत्पन्न होने वाली अभावजन्य वृत्ति है, वह दरिद्रता है। गोस्वामी जी की सामाजिक दरिद्रता पर दृष्टि जाती है। और जब सामाजिक दरिद्रता पर उनकी दृष्टि गयी तो उन्होने "कवितावली" रामायण में भगवान श्रीराम से निवेदन किया कि आज समाज की कैसी दयनीय दशा हो गयी है ? और वहां पर सारे समाज की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए वे यही कहते हैं कि—

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों 'कहां जाई, का करी ?"

लोगों के पास कृषि-योग्य भूमि नहीं हैं। लोगो के पास व्यापार नही है। जो नौकरी करना चाहते हैं उनके पास नौकरी का अभाव है और जहां-तहां लोग व्याकुल हो करके भटकते हुए एक दूसरे से पूछते है कि हम कहां जायं, और क्या करे ? और तब गोस्वामी जी भगवान से निवेदन करते हैं कि महाराज ! आपने तो रावण का वध करने के लिए अवतार लिया था। ये दरिद्रता भी एक प्रकार से रावण का ही रूप है। तो जैसे आपने उस रावण का वध किया था उसी प्रकार से इस दारिद्र्य रूप रावण का भी वध कीजिए। अन्त में वे प्रार्थना करते हुए कहते हैं :—

"दारिद दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु !
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ।"

तो यहा पर गोस्वामी जी जिस दरिद्रता का वर्णन करते है वह है अभावजन्य दरिद्रता । लेकिन जब वे दीन शब्द का प्रयोग करते हैं तो दीन शब्द जो है वह दरिद्रता से कुछ भिन्न है । दरिद्रता बहिरङ्ग है और दैन्य जो है वह मन की वृत्ति है । इसका अभिप्राय है कि ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है कि जो बहिरङ्ग-दृष्टि से दरिद्र हो, लेकिन मन से दीन न हो । और ऐसे भी व्यक्ति हो सकते है जो कि बहिरङ्ग दृष्टि से दीन न हो, लेकिन मन की दीनता उनमे विद्यमान हो । तो द्रव्य का जो अभाव है वह दरिद्रता है । और मन की जो हीनता की वृत्ति है, वह दैन्य है । तो इसका अभिप्राय यह है कि वस्तुतः यह आवश्यक नही है कि व्यक्ति के जीवन मे दोनो विद्यमान हो । इस लिए रामराज्य के सन्दर्भ मे दोनो शब्दो का अलग-अलग प्रयोग किया और दोनो के साथ-साथ तीसरी वस्तु और जोड़ दी गई "दु:ख" । तो दु:ख की जो व्याख्या रामराज्य के प्रसङ्ग मे की गई इसमे थोडा विस्तृत विश्लेषण किया गया । स्वभावजन्य दुःख और अभावजन्य दुःख के साथ-साथ दो वस्तुओ को रामराज्य की व्याख्या के प्रसंग मे और जोड दिया गया । और यह कहा गया कि दुःख के चार कारण व्यक्ति के जीवन मे पाए जाते है । तो दुःख के जो चार कारण बताए गए उसमे कहा गया :—

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माँहि ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुःख काहुहि नाँहि ।।

काल कृत दु:ख, कर्म कृत दु:ख, गुण कृत दुःख और स्वभाव कृत दु:ख । इस तरह से मनुष्य के दु:खो को भी चार रूपो मे प्रस्तुत किया गया । तो इन चार दु:खो मे कुछ दु:खो पर तो मनुष्य का बहुत कम अधिकार है । जो कालजन्य दु:ख है, इनको तो व्यक्ति को सहना ही पडता है । आज शीत की समस्या है, तो यह तो काल जन्य है । इसी प्रकार से शरीर का वृद्ध हो जाना, मृत्यु हो जाना, काल जन्य है । तो काल के परिणामस्वरूप भी व्यक्ति के जीवन मे कुछ दु:ख आते

है। और कुछ दुःख ऐसे होते है जो काल जन्य न होकर के कर्मजन्य होते है। इसका अभिप्राय है कि इस जन्म को तो देखकर नही लगता है कि व्यक्ति को दुःख मिलना चाहिए, लेकिन यदि फिर भी दुःख मिल रहा है तो कल्पना करते है कि, जैसे फल को देख करके अनुमान होता है कि किसी न किसी वृक्ष में ही लगा होगा, इसी प्रकार से परिणाम को देख करके यह कल्पना हो जाती है कि यह किसी न किसी पूर्व जन्म का ही परिणाम है।

तीसरे प्रकार के दुःख को गुण कृत दुख वताया गया है। गुण कृत दुःख का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की रचना की जो धातु है, वह त्रिगुण से वनी है। तो भई ! वहिरंग दोष जो है उसे तो व्यक्ति चेष्टा करके निकाल सकता है। जैसे यो दृष्टान्त के रूप मे कहे कि अगर कोई वर्तन गन्दा हो गया हो तो वर्तन की गन्दगी को धो करके आप साफ कर सकते है, उसे स्वच्छ कर सकते है। लेकिन वर्तन जिस धातु का वना हुआ है अगर उस धातु मे कोई कमी हो, जैसे पीतल के वर्तन में कोई गन्दगी लग गयी तो आपने उसे धोकर साफ कर दिया, लेकिन पीतल मे स्वयं कुछ न कुछ दोष होता है। खट्टी वस्तु आप पीतल के वर्तन मे रख दीजिए तो तुरन्त उसमे विकृति आ जाती है, अन्य वस्तुओं को भी यदि आप पीतल के पात्र मे रख दीजिए तो विकृति आ जाती है, तो भई धोने से और स्वच्छ करने से जो वहिरङ्ग मलिनता आयी है, वह भले ही मिट जाय, लेकिन जो धातुगत दोष है वह मिटना सम्भव नही है। इसका रामायण मे सवसे सुन्दर दृष्टान्त आता है सती के चरित्र में। सती ने अपने शरीर का परित्याग क्यों किया ? सती दक्ष के यज्ञ में जा करके नवीन पुनर्जन्म के लिए अपने शरीर का परित्याग करती है, उसके पीछे सती की क्या भावना है ? देखिए—सती ने अच्छी तरह से देख लिया कि भगवान शंकर के सत्संग से मै वहिरंग दोषों को मिटाने की चेष्टा तो कर रही हू और चेष्टा करने पर उन दोषों में कमी भी आ गई, लेकिन ये दक्ष की बेटी के रूप मे जो दक्षत्व मेरे अन्त करण मे है जब तक इससे छूटी नहीं [illegible] तव तक हम इससे मुक्त नहीं होगी। इसलिए अब तो धातु ही वदल देनी होगी।

मूल प्रकृति को ही वदल देना होगा। और इस प्रकार अपने शरीर का परित्याग कर पार्वती के रूप मे सती नवीन पुनर्जन्म लेती है। नवीन जन्म लेने का अभिप्राय है कि महाराज ! मैं अपने प्रयत्न से वहिरङ्ग दोषों को मिटा सकती हूं, पर दक्ष की वेटी के रूप में जो अन्तरङ्ग मे हमारे संस्कार मे दोष पैठ गए है, उनको तो विना पुनर्जन्म के मिटाना मेरे लिए सम्भव नही है। इसी प्रकार जव मनुष्य के शरीर में सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण, तीनों विद्यमान हैं, तो व्यक्ति चाहे अथवा न चाहे यदि तमोगुण है तो व्यक्ति को नीद आवेगी, रजोगुण है तो व्यक्ति के जीवन मे क्रोध आदि वृत्तियो का जन्म होगा। सत्वगुण है तो व्यक्ति के जीवन में विचार का भी उदय होगा। तो, ऐसी परिस्थिति में जव हम जिस गुण को नही चाहते और वह गुण उदित हो जाता है तो व्यक्ति दुखित हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि पलंग पर यदि नींद आ जाय तो तमोगुण का सदुपयोग है। व्यवहार करते समय यदि रजोगुण का उदय हुआ तो रजोगुण का सदुपयोग है। और पूजा मे, ध्यान मे वैठकर अगर सतोगुण उत्पन्न हो तो सतोगुण का उपयोग है। पर यदि कथा मे वैठ करके तमोगुण आ जाय, नीद आने लगे और पलंग पर जा करके विचार होने लगे, नीद ही न आवे, तो इसका अभिप्राय है कि जिस समय जो गुण नही आना चाहिए उस गुण ने प्रवेश करके व्यक्ति को दुःखी वना दिया। तो ये जो चारो प्रकार के दुःख है गोस्वामी जी कहते हैं कि रामराज्य में ये विद्यमान नही थे।

अव यह जो सूत्र उन्होने दिया इसका अभिप्राय यह है कि दरिद्रता के भी तीन रूप हैं—अभावजन्य दरिद्रता, मानसिक दरिद्रता, और विवेकजन्य दरिद्रता। यह विवेक की दरिद्रता को भी रामचरितमानस मे दरिद्रता कहा गया। एक शब्द रामचरितमानस में कहा गया—

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी ।
ग्यान रंक नर परम अभागी ॥

'जो ज्ञान की दृष्टि से दरिद्र हैं' तो इसका अभिप्राय यह है कि यह अन्तरङ्ग जो दीनता है, वह विवेक के अभाव में व्यक्ति के अन्तः-

करण में उत्पन्न होती है। अन्तरंग दीनता का अभिप्राय है कि ईश्वर से अपने सम्वन्ध को भूल जाना। जीव, ईश्वर का साक्षात अंश है। यदि इस ईश्वर के अंशत्व का व्यक्ति के विवेक में बोध है, तो उसके अन्तःकरण में अभाव की या अपने आप मे न्यूनता, निम्नता की कल्पना होगी ही नहीं। लेकिन, व्यक्ति तो अपना सम्बन्ध ईश्वर से भूला हुआ है, और यही उसकी ज्ञानजन्य दरिद्रता है। तो इस प्रकार मानसिक दृष्टि से दरिद्र, वौद्धिक दृष्टि से दरिद्र और शारीरिक दृष्टि से दरिद्र, ये दरिद्रता के तीन रूप हैं। अव जैसे रावण के चरित्र में वहिरङ्ग दृष्टि से तो दरिद्रता का प्रश्न ही नही है। वहिरङ्ग दृष्टि से सारे संसार पर उसका शासन है। और इसके साथ-साथ लङ्का सोने की वनी हुई है। लेकिन, जव सङ्केत की दृष्टि से यह कहा गया कि रावण ने सीताजी को चुराया तो इसका अभिप्राय क्या? कि भाई! चोरी तो अभावग्रस्त व्यक्ति ही करता है। तो, चार सौ कोस सोने की लङ्का वाला व्यक्ति जिसकी इतनी सुन्दर पत्नियां हों, वह चोरी के मार्ग पर चले। इसका अभिप्राय है कि वरहिङ्ग दृष्टि से रावण भले ही दरिद्र न रहा हो पर मन की दृष्टि से, और विचार की दृष्टि से उसके जीवन मे दरिद्रता विद्यमान है। इसी प्रकार से बेचारे विभीषण के अन्तर्हृदय में एक प्रकार की दीनता की जो वृत्ति थी, उसका सम्वन्ध विवेक से था। जव हनुमान जी से विभीषण का मिलन होता है तव हनुमान जी उनके ज्ञान की रङ्कता दूर कर देते है। इसका अभिप्राय है कि विभीषण यह सोच करके अपने आपको रावण से अलग नहीं कर पाते कि मै रावण का छोटा भाई हूं। और यदि मै रावण का छोटा भाई हू तो फिर मै श्रीराम के पास जाने योग्य नही हूं। ऐसी स्थिति मे रावण का परित्याग करना शायद धर्म के विरुद्ध भी हो। ये सारी की सारी वृत्तिया उनके अन्तःकरण मे, उनके मन में विद्यमान थी। अव हनुमान जी इसे मिटाते है सतसंग के द्वारा। अव यह क्रम है कि व्यक्ति प्रयत्न और पुरुषार्थ के द्वारा वाह्य दरिद्रता मिटावे, भक्ति के द्वारा मन की दरिद्रता मिटावे। और तीनो प्रकार की दरिद्रता जव मिट जाती है तव राम-राज्य की स्थापना होती है। हनुमान जी महाराज ने विभीषण के अन्तःकरण के भ्रम को दूर करने के लिए एक सूत्र दिया, और वह

यह है कि जब वे विभीषण को सम्बोधित करते है, तो विभीषण को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा :—

"तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता ।"

हनुमान जी ने कहा—'भाई विभीषण !' यह 'भाई' शब्द जान-बूझ करके अन्तःकरण मे एक जो भ्रम है, उसे मिटाने के लिए है। 'भाई' शब्द सुन करके विभीषण जो तो चौंक पडे। क्योंकि न तो हनुमान जी लङ्का की दृष्टि मे भाई, क्योंकि एक देश वाले भी अपने को भाई मान सकते है। न एक जाति की दृष्टि मे भाई, न एक कुल की दृष्टि मे भाई। अलग-अलग जाति में, अलग-अलग कुल मे, भिन्न-भिन्न स्थानों मे दोनों का जन्म हुआ, दोनो के माता-पिता भी अलग-अलग, तो भाई कैसे हुए ? पर, हनुमान जी विभीषण का यही भ्रम दूर करना चाहते है। हनुमान जी का अभिप्राय था कि असली भाई तो तुम्हारे हम है, रावण तुम्हारा असली भाई नही है। कैसे ? तो सूत्र दे दिया बोले, "विभीषण ! पहले यह तय हो जाना चाहिए कि आप कौन है ? अगर आप अपने को शरीर समझते है, तो आपका भाई रावण है। पर विभीषण का अर्थ अगर 'जीव तत्व' है, तो आप मेरे भाई है।" उन्होंने कहा—'आप और हमारी दोनो की माँ तो एक है। इसलिए हम लोग सगे भाई है।' दोनो की एक मां कौन है ? तो हनुमान जी अगले ही वाक्य में कहते है—

तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता ।
देखी चहउं जानकी माता ॥

"वस्तुतः, जनकनन्दिनी सीता ही हमारी और तुम्हारी मा है। क्योकि सृष्टि का सृजन करने वाली मा जगज्जननी सीता है। और यदि सृजन करने वाली मा ! सीता है तो हम तुम्हारे सगे भाई है। इस भ्रम को तुम अब छोडो और निर्णय करो कि असली भाई का साथ दोगे या नकली भाई का साथ दोगे। रावण, तुम्हारा नकली भाई है और मै तुम्हारा असली भाई हूं।" बस, विभीषण को प्रकाश मिल गया। यद्यपि अभ्यास छूटना बड़ा कठिन होता है। एक बार एक सज्जन ने मुझसे पूछा कि विभीषण जी जब भगवान श्रीराम के

शरण मे पहुच गये तो विचारो को बहुत देर तक वाहर खड़ा रखा गया ! वडा वहा तर्क-वितर्क हुआ और तव कहीं जाकर भगवान राम ने स्वागत किया ! तो विभीपण को शरण में लेने में इतना विलम्व क्यो हुआ ? मैंने कहा—वस, एक ही भूल के कारण हुआ, कि जिस समय वन्दरों ने विभीपण जी से पूछ दिया कि क्या सूचना दे, क्या वताये कि कौन आया है ? तो विभीषण का जो पुराना अभ्यास था वह जाग गया, और पुराने अभ्यास के नाते मुह से निकल गया---

"आवा मिलन दसानन भाई ।"

"जाकर कह दीजिए कि रावण का भाई आया हुआ है ।" अगर कही कहला देते कि हनुमान जी का भाई आया हुआ है, तव तो विलम्व लगता ही नही । तव तो तुरन्त ही वुला लिया जाता । इसका अभिप्राय यह है कि जीव की अपने आपको आत्मा न समझकर, शरीर मानने की जो दरिद्रता है, उसी के कारण से रावण के भ्रातृत्व का आरोप अपने जीवन मे व्यक्ति कर लेता है । तो सच्चा रामराज्य वही है जहा पर न तो वहिरङ्ग अभावजन्य दरिद्रता हो, न मानसिक दरिद्रता हो और न ही विचारजन्य दरिद्रता हो ।

अव आइए, इस कसोटी पर केवट को कस कर देखें कि, इन तीनो मे से किसी भी प्रकार की दरिद्रता केवट में विद्यमान हैं क्या ? और तव आप पावेंगे कि केवट तो ऐसा अनोखा पात्र है कि सचमुच उसमें किसी प्रकार की दरिद्रता नही है। आप ज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो उसको ज्ञान की दृष्टि से दरिद्र कह सकते हैं क्या ? तो आप देखेगे कि केवट ज्ञान की दृष्टि से विल्कुल गरीव नही है । वल्कि यह कहना चाहिए कि वडे-वड़े ज्ञानी ऋषि-मुनियो ने जिस ज्ञान का दावा नही किया, उस ज्ञान का दावा भगवान राम से केवट ने किया। भगवान श्री राघवेन्द्र गंगा के किनारे खड़े है और केवट से कहते है कि केवट नाव ले आओ, और केवट कहता है कि मै नाव नही ले आऊगा । श्री लक्ष्मण जी ने सुना तो उनको लगा कि शायद इस वेचारे को ठीक-ठीक पता नही है कि ये कौन है ? इसलिये इतनी वडी ढिठाई कर रहा है । क्योकि हम लोग तो प्रभु का मुंह निहारते रहते है, भगवान राम के भक्त तो प्रभु का मुख देखते रहते है—

प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं।
कबहुं कृपाल हमहिं कछु कहहीं ॥

श्री भरत जी, श्री लक्ष्मण जी, श्री शत्रुघ्न जी, श्री हनुमान जी सर्वदा प्रभू का मुख देखते रहते है कि प्रभु के मुख से कोई आज्ञा मिले और उस आज्ञा का पालन करके हम धन्य हो जायें। तो श्री लक्ष्मण जी सोचते है कि जिनकी आज्ञा पाने के लिए हम व्यग्र रहते हैं वही प्रभु स्वयं खड़े होकर अपने मुख से आज्ञा दे रहे है कि मेरे लिए नाव ले आओ, और यह कह रहा है कि मैं नाव नहीं ले आऊंगा। तो इसका अभिप्राय है कि प्रभु के माहात्म्य से, प्रभु के स्वरूप से, प्रभु की महिमा से, इसका परिचय नहीं हुआ। लेकिन, केवट ने जो अगला दावा किया वह तो बड़ा अनोखा था ! केवट से अगर कोई पूछ दे कि तुम इन्हे पहिचानते हो ? इसका अर्थ है कि कभी कोई बहुत बड़ा व्यक्ति इस प्रकार से किसी साधारण से व्यक्ति के सामने खड़ा हो जाय, और अनजाने में वह सामने वाला व्यक्ति उसकी अवहेलना कर रहा हो और कोई याद दिला दे कि अरे, ये तो वो व्यक्ति है, तो बेचारा घबरा करके क्षमा याचना करने लगेगा कि अरे ! मैं तो नही जानता था ! अनजाने मे मुझसे बड़ी भूल हुई ! तो लक्ष्मण जी को लगा कि यदि केवट को यह बता दिया जाय कि ये कौन है ! तो शायद यह अपनी भूल समझ लेगा और तुरन्त क्षमा मांग लेगा। लेकिन, केवट ने जो दावा किया वो तो बडा अनोखा दावा था ! केवट ने जब दावा करते हुये यह कहा कि महाराज ! मुझे आपसे रञ्चमात्र डर नहीं लगता, क्योंकि आपसे तो डरने का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह मेरी अज्ञानजन्य निर्भयता नही है। दो प्रकार की निर्भयता होती है—एक तो 'ज्ञानजन्य निर्भयता' और दूसरी 'अज्ञानजन्य निर्भयता।' तो केवट ने कहा कि मेरी जो निर्भयता है वह अज्ञान के कारण से नहीं है। तब किस कारण से है ? तो केवट कहता है—

"कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥"

"मै आपके मर्म को अच्छी प्रकार से जानता हूं।" 'आपके मर्म' माने—जो भीतर से भीतर छिपा हुआ रहस्य है उस रहस्य को मै

जानता हूं। चकित हो गये लक्ष्मण जी ! आज तक ऐसा दावे वाला कोई नहीं मिला ! जनक जैसे ज्ञानी भी मिले तो उन्होंने यही शब्द भगवान श्री राघवेन्द्र के विषय मे कहा—

मन समेत जेहि जान न बानी ।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ।।
महिमा निगमु नेति कहि कहई ।
जो तिहुं काल एक रस रहई ।।

महाराज श्री जनक भी भगवान की अनिर्वचनीयता का प्रतिपादन करते है । पर केवट भगवान राम से दावा करता है कि मैं आपको जानता हूं। और सचमुच ये निर्भयता किस व्यक्ति के अन्तःकरण में उत्पन्न होगी ? जिस व्यक्ति के अन्तःकरण में अपने को शरीर मानने का भान होगा, जिसके अन्तःकरण मे काल और मृत्यु का भय होगा, उस व्यक्ति के अन्तःकरण मे भय का संचार हुए बिना नही रहेगा । लेकिन केवट ने जो दावा किया, अब उस सन्दर्भ में अगर देखे, तो केवट को गोस्वामी जी एक भिन्न प्रतीक के रूप में भी रखते है । गोस्वामीजी कहते है—

"केवट बुध बिद्या बड़ि नावा ।"

केवट के लिये गोस्वामी जी कहते हैं कि यह जो 'विवेकी' है वही केवट है । और इसीलिए इसकी प्रतीकात्मक भाषा चुनी गयी है कि यह पार उतारने वाला है । तो सांकेतिक भाषा मे यह है कि, संसार सागर को व्यक्ति विवेक के द्वारा पार करता है । जिस व्यक्ति में विवेक है वही पार हो सकता है । और जो दूसरे को पार करा सके, उसके विवेक की तो कोई सीमा नही है । तो यह जो केवट है इसकी विलक्षणता यह है कि यह भगवान श्री राघवेन्द्र के मर्म को जानने का दावा करने वाला है, और मर्म को जानने का दावा करने के साथ साथ केवट के अन्तःकरण [illegible] भावना क्या है ? बोले—महाराज ! मुझे आपसे [illegible] क्या, ईश्वर से डर नहीं लगता तो केवट ने [illegible] कि महाराज ! किसी भी

विचार कर लीजिये डरने की कोई ग्रावश्यकता नही। क्यो ? बोला-सारे ससार को पार उतारने वाला जव मुझसे पार उतारने को कह रहा है तो महाराज फिर डर कैसा ? ग्ररे, ग्राप भी जीव को पार उतारते है तो अपनी ही शर्त पर उतारते है कि भई ! ऐसा-ऐसा ग्राचरण करो, ऐसी-ऐसी भक्ति करो, ऐसी साधना करो, तव हम तुम्हें पार उतारेंगे। तो ग्राप जिस मर्यादा का पालन करते है ग्रौर ग्रगर ग्राज यहा पार उतरने के लिए ग्राए हुए है, तो मै भी जिस तरह से कहूं वैसा-वैसा करते जाइये ! अन्य किसी प्रकार का भय इसलिए नही है कि महाराज! मृत्यु का भय तेरे जीवन से छूट चुका है। इसका ग्रभिप्राय है कि ग्रगर उसको विवेकी के रूप मे देखे, तो वह भगवान के ग्रंश के रूप मे यह जानता है कि जीव जो है वह कभी विनष्ट नही हो सकता। भगवान ग्रौर ग्रपने सम्वन्ध को जानने के साथ-साथ उसमे छिपा हुग्रा सकेत है। रामायण मे यह प्रश्न उठाया गया कि भगवान को कैसे जाना जाता है ? तो कहा गया कि जहाँ तक ग्रगर कोई व्यक्ति भगवान को जानने की चेष्टा करे, तो —

> जग पेखन तुम्ह देखनिहारे।
> बिधि हरि संभु नचावनिहारे ॥
> तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा।
> ग्रौरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥

यह कहा गया कि ब्रह्मा, विष्णु ग्रौर शङ्कर भी वस्तुतः मर्म जानने का दावा नही कर सकते। यह नही कह सकते है कि, मैंने ईश्वर का मर्म ठीक-ठीक जान लिया। इसलिए रामायण मे ब्रह्मा के ग्रन्त.करण मे भ्रान्ति के उदय की वात कही गयी। ग्रौर एक प्रसङ्ग तो ऐसा ग्राता है जहाँ भगवान शङ्कर को भी ऐसा लगा कि सचमुच आपकी लीला को समझ पाना ग्रत्यन्त कठिन है। जव भगवान श्री राघवेन्द्र को वन मे विलाप करते हुए शङ्कर जी ने देखा तो वड़े प्रसन्न हुए। तो प्रसन्नता के पीछे रहस्य यह था कि ग्रगस्त जी से कथा सुन करके भगवान शङ्कर के हृदय मे यह इच्छा उत्पन्न हुयी थी कि चल करके प्रभु का दर्शन करे। लेकिन, फिर शङ्कर जी को भय लगा, उन्होने सोचा कि मै ग्रगर जाऊंगा तो प्रभु का नाटक विगड़ जायेगा, क्योकि प्रभु इस

समय मनुष्य के रूप में नाटक कर रहे है। और ज्यों ही मै जा करके प्रभु को प्रणाम करूंगा त्यों ही संसार के लोग यह अच्छी तरह से समझ जायेगे कि शङ्कर जी ने जिसको प्रणाम किया वह तो मनुष्य हो ही नही सकता—

"गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गये जान सब कोय।"

और सभी लोग जव प्रभु को पहिचान जायेगे तो हमारे प्रभु का नाटक विगड़ जायेगा। इसलिए प्रभु के पास जाना ठीक नही है। शङ्कर जी इसलिए नही गए। तो भगवान राम स्वयं आ गये, अच्छा! आप नही आ रहे है तो मैं ही आ जाता हूं। बाद में भगवान शङ्कर ने कहा कि प्रभु! ये जितना नाटक आपने किया था, मेरा भ्रम तोडने के लिये ही था। मुझे भ्रम तो हो गया था, वह मेरा भ्रम आपने तोड़ दिया। क्या? वोले, प्रभु जव मेरे मन मे यह वात आयी कि मै आपको प्रणाम करूंगा तो संसार के सभी लोग जान जायेगे कि ये ईश्वर है तो मैंने आपको इतना महत्वपूर्ण मान लिया। मुझे लगा कि मेरे प्रणाम करने के वाद कौन ऐसा होगा जो श्रीराम को ईश्वर न मान ले? पर, आपने ऐसा व्यंग्य किया कि मेरा तो सारा भ्रम ही टूट गया। क्या? वोले—मैंने आपको प्रणाम किया और जव सवसे पहला भ्रम मेरी पत्नी के ही मन मे हुआ, तो मै समझ गया कि जिसे आप जनाना चाहे, वही आपका भेद जान सकता है। मेरे प्रणाम-वणाम करने का कोई अर्थ नही है। और प्रभु! भ्रम भी हुआ तो हमारे परिवार के दो सदस्यों के मन में। या तो मेरे चेले रावण को भ्रम हो गया, या मेरी पत्नी सती को भ्रम हो गया तो यह भ्रम वताता है कि वस्तुत:—

"सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।"

एक वड़ा सुन्दर सङ्केत आप यहा पर देखेगे। महर्षि वाल्मीकि कहते है कि यदि ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर भी दावा करे कि मै आपको जानता हूं तो उनका दावा सही सिद्ध नही होगा। ब्रह्मा को भी भ्रम हो जायेगा, विष्णु को भी भ्रम हो जाएगा और शङ्कर को भी भ्रम

हो जाएगा। फिर प्रश्न यह है कि क्या आप को जाना ही नही जा सकता है।

'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।"

आप स्वयं जिसे जनाना चाहे वही आपको जान सकता है। और जो जान लेगा, उसका फल क्या है? तो वोले :—

"जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।"

जो आपको जान लेता है वह आपके ही सदृश्य हो जाता है। तो केवट ने जव दावा किया कि आपका मर्म मै जानता हूं तो केवट के दोनों ही तात्पर्य थे। एक तात्पर्य तो यह था कि महाराज! जनाया होगा आपने, तभी तो मै जानता हू। दूसरे, जब मैं आपको जान गया तो "जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई" तो, अव आपसे डरने की क्या आवश्यकता है? जव आपको जानने के पश्चात् मेरे हृदय मे आपसे अभिन्नता का बोध हो गया, तो अव इसके पश्चात् मेरे अन्त.करण मे कोई भ्रम नही है। केवट के अन्तःकरण में सचमुच भगवान की महिमा का पूरा वोघ है। यह तो ज्ञान की दृष्टि से केवट की भूमिका है, जहा पर विचार की, वह पूरी तरह से निर्भय है। इसके साथ-साथ उसके अन्तःकरण में, उसकी जो महानतम् विजय है, और जो पग-पग पर दिखायी देती है वह यह है कि, केवट भगवान श्री राघवेन्द्र मे अनुरोध करता है कि—"मैने सुना है कि आपके चरण कमलो मे ऐसी कोई दिव्य जडी है जो जड़ को चेतन वना देती है। आपने गौतम की पत्नी अहल्या, जो प्रस्तर के रूप मे पडी हुयी थी उसे चेतन वना दिया।" भगवान ने मुस्कुरा करके देखा—वोले भाई! चमत्कार सुन करके तो लोग और भी प्रभावित हो जाते है। किसी के विपय मे सुन ले कि इनमे चमत्कार है तो वडी भीड उमड पडती है। तो भगवान श्रीराम, केवट से कहते है कि "भई! तुम तो वहुत लम्बे मुझसे परिचित लग रहे हो? तो फिर तो तुम्हारे अन्त करण मे मेरे प्रति आकर्षण उत्पन्न होना चाहिए?" तो केवट ने तुरन्त कह दिया—

"चरन कमल रज कहुं सबु कहई।
मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई।"

"महाराज ! मैं जानता हूं कि आप मुक्ति को देने वाले है। आपने गौतम की पत्नी को मुक्त कर दिया। आपसे मुक्ति माँगने वाले बहुत भिखारी मिले होगे, पर मुझे मुक्ति नही चाहिए।" और व्यंग्य क्या किया ? बड़ी मीठी बात कही। बोला, "महाराज ! गौतम जी की बात जाने दीजिए। वे ऋषि मुनि थे। उन्होंने जड़ को चैतन्य करने के लिये, मुक्त करने के लिए कहा। पर, मेरी समस्या यह है कि कहीं मेरी नौका को आप मुक्त न कर दे ?" प्रभु ने कहा तो—"तुम यह क्यों चाहते हो कि मेरी नौका मुक्त न हो ?" तो केवट ने तुरन्त मीठा विनोद करते हुए कहा—

"बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।"

"महाराज ! मेरी नाव मुक्त हो गई होती तो क्या आप यहां आते ? यह नाव बनी हुई है तभी तो इस नाव के कारण आपको आना पड़ा। तो मै तो यह नही चाहूंगा कि लोगों का आना-जाना बन्द हो जाय।" और सांकेतिक भाषा है क्या, ? कि काठ मे और पत्थर मे बड़ा अनोखा भेद है। पत्थर बहुत भारी और काठ अत्यन्त हल्का। पत्थर कठोर और काठ अत्यन्त कोमल। तो केवट ने कहा कि "प्रभु हर तरह से पत्थर की अपेक्षा काठ जो है वह कोमल भी है और हल्का भी। और फिर महाराज ! यह जो मेरी नौका है वह तो और भी कोमल हो गई है।" कैसे ? तो केवट ने कहा—

"पाहन ते बन बाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा।"

"महाराज ! ये तो गंगा जी मे रहते-रहते अत्यन्त कोमल हो गई है।" और इसका अभिप्राय क्या ? कि जो शुष्क बुद्धि वाले है उनको मुक्ति की आवश्यकता है, पर भक्ति की गंगा में जिसकी बुद्धि डूबी हुई है, कोमल हो गई है उन्हे मुक्ति नही चाहिये। यहा पर इस मुक्ति की अपेक्षा नही है। केवट तो इतना अनोखा निकला कि, आगे चल कर उसकी जो पराकाष्ठा होती है वह तब होती है कि जब भगवान श्री राघवेन्द्र पार उतरते है। भगवान राम के उतरने के पश्चात् केवट ने दण्डवत किया। बड़ा अनोखा केवट है। नियम तो यह है कि

जव कोई आता है तो आप दण्डवत प्रणाम करते है, और यहा जव भगवान राम आये तो दण्डवत प्रणाम नही किया। और जव पार उतार दिया तव दण्डवत किया। तो इसका अभिप्राय यह है कि केवट वड़ा सावधान था। दण्डवत करने का अभिप्राय है समर्पण। जिसको हम दण्डवत कर रहे है वह जो कहेगा मैं करूगा। तो केवट ने निर्णय किया कि, जो ये कहेगे वो तो मै अभी करने वाला हूं नही, इसलिए अभी से दण्डवत करना ठीक नही। पहले अपने मन के अनुकूल इनमे काम ले लूँ, इसके पश्चात् फिर मै देखूँगा। और इसीलिए जव उतार चुका तो फिर साष्टांग प्रणाम किया। इसका अभिप्राय था कि प्रभु ! अव कोई आदेश दीजिए। पर भगवान श्री राघवेन्द्र को लगा कि कोई काम करने के वाद प्रणाम करे, तो इसका अभिप्राय है कि संकेत कर रहा है कि मेरी मजदूरी या मेरा पुरस्कार तो दीजिए ? तो भगवान श्री राघवेन्द्र संकोच मे गड़ करके सोचने लगे कि मै केवट को क्या दूँ ? भगवान श्री राघवेन्द्र के संकोच को जनकनन्दिनी सीता ने समभ लिया और उन्होने अपने हाथ की मुद्रिका उतारकर प्रभु को दे दी। प्रभु ने वह मुद्रिका केवट को दे दिया, और केवट को दे करके भगवान श्री राघवेन्द्र कहने लगे—

"कहेउ कृपालु लेहु उतराई।"

भगवान श्री राघवेन्द्र ने कहा, 'केवट ये उतराई लो।' अव यहा पर अगर साङ्केतिक भाषा मे देखे तो मुदरी किसकी है ? सीता जी की। और उस मुंदरी की विशेषता क्या है ? उसमे 'राम-नाम' लिखा हुआ है। तो श्री सीता जी मूर्तिमती भक्ति है, और भक्ति का सर्वस्व 'राम-नाम' है। तो अव केवट को इससे वडा पुरस्कार नही दिया जा सकता, क्योकि भक्ति देवी स्वय अपने हाथ से 'राम नाम' दे रही है, और भगवान स्वयं केवट को पुरस्कृत कर रहे है। पर, केवट वड़ा अनोखा निकला। गोस्वामी जी ने लिखा कि जव भगवान श्री राघवेन्द्र ने मुदरी देने का प्रस्ताव रखा तो ;

"केवट चरन गहे अकुलाई।"

केवट ने व्याकुल हो करके प्रभु के चरण पकड़, लिए। और भगवान श्रीराम से जो बात कही वही रामराज्य का पूरा लक्षण, "नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना"—केवट की वाणी में प्रतिफलित हो रहा है। केवट ने भगवान श्री राघवेन्द्र से यही कहा—

'नाथ आजु मै काह न पावा।"

भगवान राम को संकोच लगा कि मैने कुछ दिया नही, और केवट कहता है कि मैने क्या नही पा लिया ? तो यह तो बड़ी अनोखी सी बात है। भगवान राम की उदारता की पराकाष्ठा यह है कि मुदरी देते हुए उनको लगता है कि वे कुछ नही दे रहे है। इसलिए भगवान श्री राघवेन्द्र ने मुदरी देते समय यह नही कहा कि मै पुरस्कार दे रहा हू। भगवान राम ने कहा कि मैं केवल उतराई दे रहा हूं। पर केवट ने भगवान श्री राघवेन्द्र से कह दिया प्रभु !

"नाथ आजु मै काह न पावा।"

क्यो ? बोले—

"मिटे दोष दुख दारिद दावा॥"

"मेरे जीवन से आज दोष मिट गया, दुःख मिट गया, दरिद्रता मिट गयी। आज तो मेरे जीवन में ये तीनों नहीं रह गये।" क्यों ? तो बोला—"प्रभु ! आपने मुझे कितना सम्मान दिया ! कितना बड़ा बनाया ! आप सच्चे अर्थो में नौका से पार होने के लिए नहीं आये थे, क्योंकि मै जानता हू कि जो सारे ब्रह्माण्ड को दो पग में नाप सकता है उसको इस नदी को पार करने के लिए नाव की आवश्यकता नहीं है।" लेकिन, जब आपने मुझे इतना बड़ा सम्मान दिया कि समाज ने हमे अस्पृश्य मान लिया था लेकिन, जब आपने स्वयं एक नई वस्तु मुझे दी, यही नही आगे चल करके वर्णन आता है कि— "केवट ने कठौते मे नई गंगा को प्रगट किया" तो केवट का अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति एक नई गंगा को स्वयं जन्म दे सकता है उसके जीवन में दोष का प्रश्न कहा ? और आगे चल करके यह वर्णन आता

है कि केवट ने पहले अपने पितरो को पार किया और फिर प्रभु को पार किया। केवट ने कहा प्रभु ! संसार ने मुझे अछूत, अस्पृश्य समझ लिया पर आपने मुझे इतना सम्मान दे करके, आज मुझे कितना वड़ा बना दिया ! प्रभु ! जव आपने स्वयं मुझसे नाव की याचना की तो मै इतना वड़ा हो गया कि मेरे मन में दैन्य का लेश नही रहा। मै तो यह अनुभव कर रहा हू कि मुझसे वढ़कर कोई नही, जिससे आप स्वयं नाव की याचना कर रहे है। और प्रभु ! ये 'राम नाम' की मुदरी तो मै और भी लेना नही चाहता। क्यो ? वोले—"ये जो ससार सागर से पार होना चाहते है वे 'राम नाम' का आश्रय लेते है। यहा तो मै पार करने वाले को, पार कराने वाला हूं। अव मुझे क्या आवश्यकता ?" और केवट ने कहा "महाराज ! यह भी एक समस्या है कि 'राम नाम' की मुदरी ले लें तो इसका अर्थ है मन्त्र ले लिया मैने ! 'राम नाम' का जप करें ! तो ये 'राम नाम' का जप तो मुझसे होगा नही, आप ही मेरे नाम का जप कर लिया करे तो अच्छा रहेगा !" इसलिए यहां तो सारी वात ही वदली हुयी है। और अन्त मे जव प्रभु ने वड़ा हठ किया तो केवट ने एक वड़ी मीठी वात कह दी। केवट ने भगवान राम से कहा—"अच्छा, अगर आपके मन मे देने की इतनी ही वात है तो,—

"फिरती बार मोहि जो देवा।
सो प्रसाद मै सिर धरि लेवा॥"

लौटते समय जो आप दे देंगे मै उसे सिर पर धारण कर लूँगा।" तो भई ! क्या भगवान राम कोई व्यापार करने जा रहे है जो लौटते समय दे देंगे ? अरे, वन मे जा रहे है, और केवट कहता है लौटते समय लूँगा ! तो भई ! केवट वड़ा चतुर है। केवट ने जव यह कहा कि आप लौटते समय जो दीजिएगा, वह मैं ले लूँगा, तो केवट का अभिप्राय यह है कि महाराज ! आप भी पार उतारने वाले है और मै भी पार उतारने वाला हू। लेकिन, हममे और आपमे एक अन्तर है। क्या ? वोला—"मैंने सुना है कि जिसको आप पार उतारते है वह आवागमन से मुक्त हो जाता है। लेकिन, मै चाहता हूं कि मै आपको

पार उतारूं तो आप आवागमन से मुक्त न हो । अपितु, आवागमन वना रहे । मै तो ऐसा पार उतारने वाला नही हूं कि आवागमन से मुक्त करू ।" 'जीव' आवागमन के वन्धन मे बंधा हुआ है, ईश्वर छुड़ाता है। पर उस ईश्वर को आवागमन के बंधन में बाध लेने वाला कौन है ? ये निषाद है। इसका अभिप्राय कि देना है तो लौट के फिर आइए। भगवान राम सचमुच आए। और जब भगवान राम का राज्याभिषेक हुआ तो केवट को निमन्त्रण दिया। केवट कुछ दिन रहा, फिर भगवान राम ने केवट को भी विदा किया। केवट ने मुस्कुरा करके भगवान राम की ओर देखा, वोला,—"प्रभु ! आज तो वात उलट गयी। क्या ? तो वोला कि—"मैने तो सुना था कि आपके धाम में जो आ जाता है वह लौटता नही है।

"यद गत्वा न निवर्तन्ते तद्धामं परमं मम"

लेकिन, आप अपने धाम से लौटा क्यो रहे है ? ये नई वात क्यों कर रहे है ?" भगवान राम ने तुरन्त हंसकर क्या किया ? केवट को अपने कपड़े पहना दिए, अपना आभूषण पहना दिया, प्रसाद दे दिया। केवट ने कहा था न कि—

"सो प्रसाद मै सिर धरि लेवा ।"

और आप देखेंगे—गोस्वामी जी कहते है—

"पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा ।
दीन्हें भूषन बसन प्रसादा ॥"

और मुस्कुरा करके भगवान राम ने केवट से तुरन्त कहा :—

"तुम मम सखा भरत सम भ्राता ।
सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥"

"अरे ! भाई तुम्हारे हमारे वीच मे आवागमन वाला नाता ही ठीक रहेगा। तुमने भी मेरा आवागमन चाहा, और मै भी यही चाहता हू कि कभी मै तुम्हारे पास आऊं, कभी तुम मेरे पास आओ।" भक्ति

की भूमिका में जो भगवान को भी आने के लिए बाध्य कर देता है, जो यह कहता है कि भगवान मेरे जीवन मे दरिद्रता, दीनता और दुःख है ही नही, वह यह अनोखा पात्र केवट ही है। सच्चे अर्थों में भगवान राम एक साधारण से साधारण व्यक्ति को भी अपने ज्ञान, भक्ति और कृपा के द्वारा कितना महानतम बना देते है! इसका सर्वोत्कृष्ट दृष्टांत केवट है। और इसीलिए कहा जा सकता है कि यह केवट जो है, वह रामराज्य का सच्चा नागरिक है। रामराज्य के लक्षण मे जो "नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना" कहा गया, इसकी समग्रता को आप यदि कही पाना चाहे तो केवट के प्रसङ्ग में पा सकते है। अब केवट और भगवान राम के वार्तालाप का रहस्य मैं कल से आपके सामने प्रारम्भ करूंगा। आज इतना ही।

बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय।

॥ श्री राम शरणं मम् ॥

३

तो आइए, मनः शरीर से गंगा के किनारे चले और वहां अनोखे प्रेमी केवट और भगवान राम के बीच चल रहे अनोखे भाव भरे वार्तालाप का रहस्य हृदयंगम करने की चष्टा करे। प्रभु ने केवट से नाव लाने के लिये कहा परन्तु केवट ने स्पष्ट शब्दो में नाव लाने से इन्कार कर दिया। और इसके साथ-साथ उसने एक वाक्य और जोड़ दिया कि ऐसा नही कि मै आपको पहचानता नही, मै आपके मर्म से भलीभाति परिचित हूं। तो यह केवट ने जो ईश्वर के मर्म को जानने का दावा किया वह कहा तक सत्य है और ईश्वर का कौन सा ऐसा मर्म है जिसको जान करके केवट इतना निर्भय हो गया है? ईश्वर के सन्दर्भ में हमारे आचार्यो और महापुरुषो ने अपने विभिन्न मत प्रकट किये। अलग-अलग धर्मो मे ईश्वर के अलग-अलग लक्षण बताए गए। तो ईश्वर के सम्बन्ध में बताए गए किसके लक्षणो को सत्य माने और किसके बताए गए लक्षणों से भगवान को स्वीकार करे? इसका सही निरूपण गोस्वामी जी द्वारा रामचरितमानस में किया गया और उसको यो कहें कि ज्ञान की परम्परा तो यह है कि यह पता लगावे कि, ईश्वर कैसा है? लेकिन केवट प्रसंग की विशेषता यह है कि केवट जो है वह निरंतर गंगा के समीप रहने वाला व्यक्ति है और गंगा जो है वह मूर्तिमती भक्ति की प्रतीक है। इसका अभिप्राय यह है कि केवट का अन्तर्मन जो है वह भक्ति रस मे डूबा हुआ है। उसकी बुद्धि जो है वह भक्ति के शुद्ध जल में सुकोमल हो चुकी है। केवट के अन्तःकरण मे भक्ति की यही मान्यता विद्यमान है और

वह एक विशेष प्रकार का आग्रही भक्त है, जो भक्ति का प्रतिपादन करता है। भक्ति शास्त्र मे ईश्वर के सम्बन्ध मे क्या मान्यता है जब यह प्रश्न आया, तो भक्तों ने बहुत बढ़िया उपाय बताया। और अगर उस दृष्टि से विचार करके देखें तो सारे झगड़े और सारे तर्क-वितर्क समाप्त हो जाते है। ज्ञान की परम्परा तो यह है कि यह ज्ञात किया जाय कि ईश्वर कैसा है, उसके क्या लक्षण है ? पर भक्तो ने बड़ी चतुराई की। भक्तो ने इस बात पर विचार नही किया, इस बात पर बल नहीं दिया कि ईश्वर कैसा है ? अपितु जब किसी ने प्रश्न पूछा किसी भक्ति के आचार्य से कि, ईश्वर कैसा है ? तो भक्त ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। भक्त ने कहा कि ईश्वर कैसा है इस विवाद मे पड़ने की कोई आवश्यकता नही। तुम्हे कैसा ईश्वर चाहिए, प्रश्न यह है ? तो ज्ञान की मान्यता यह है कि ईश्वर कैसा है यह पता लगावे पर भक्ति की मान्यता यह है कि ईश्वर चाहे जैसा हो, पर हमे जैसा ईश्वर चाहिए वह हमारी आवश्यकता के अनुरूप हो। भक्त यही आश्वासन देते है कि हम वैसा ही ईश्वर तुम्हें दिला देगे जो तुम्हारी मान्यता के अनुकूल हो।

इसीलिए रामचरितमानस मे एक बडा सार्थक दृष्टात दिया गया। एक व्यक्ति ने किसी व्यक्ति को देखा और उसको लगा कि यह तो बडे कठोर स्वभाव का है। दूसरे व्यक्ति ने उसी व्यक्ति को देखा तो उसको लगा कि यह तो कोमल स्वभाव का है। और अलग-अलग व्यक्तियो ने उसे भिन्न-भिन्न समय मे देखा तो वह व्यक्ति अलग-अलग दिखाई पड़ा। अब, जितने देखने वाले थे, उनका आग्रह यह था कि मै जो दावा कर रहा हू, वह बिलकुल ठीक है, क्योंकि मैंने उस व्यक्ति को अपनी आखो से देखा है। किसी व्यक्ति ने निश्चित रूप से कहा कि ये तो लक्ष्मण है, मैने अपनी आखो से देखा है। पर दूसरे व्यक्ति ने कहा कि नही ये तो अर्जुन हैं, मैंने अपनी आखों से देखा है। तीसरे व्यक्ति ने इतिहास के किसी और पात्र का नाम ले करके कहा कि नही, यह तो अमुक व्यक्ति है। जब सबके सब यह दावा करने लगे कि हम सबने अपनी आखो से देखा है और प्रत्येक देखने वाले को वह व्यक्ति अलग-अलग दिखाई दे रहा हो तो

फिर इसमे किसकी दृष्टि को प्रमाण माने और किसकी दृष्टि को असत्य माने ? और जब यह विवाद हुआ तो अन्त में यह सोचा गया कि चलो उसी से चल करके पूछा जाय कि आप कौन है ? लक्ष्मण है कि अर्जुन है या इतिहास के जिन-जिन पात्रों के रूप में हमने आपको देखा है उनमें से आप कौन है ? स्वयं आप अपना परिचय दीजिए ? तो उसने बहुत सुन्दर उत्तर दिया। उसने कहा—भाई ! हम तो नाटक के अभिनेता है जिस नाटक में मुझे जो पाठ दे दिया जाता है वही पाठ मैं स्वीकार कर लेता हूं। जिस व्यक्ति ने रामायण के नाटक मे मुझे देखा है वह लक्ष्मण के रूप में देखता है। जिसने महाभारत के नाटक मे मुझे देखा उसकी दृष्टि में मै अर्जुन के रूप मे दिखाई पडता हू। पर वस्तुत मै तो रंगमंच पर अपने आपको प्रस्तुत करता हूं और उस नाटक मे जिस पात्र के रूप में मुझे अभिनय के लिए कहा जाता है उसी को पूरा कर देता हूं। गोस्वामी जी ने यही समाधान दिया। प्रश्न आया—ईश्वर कैसा है ? निराकार या साकार, सांवला कि गोरा, राम या कृष्ण, कि काली या अन्य किस ईश्वर को हम स्वीकार करे ? तो गोस्वामी जी बड़ा सुन्दर उत्तर देते है—उत्तरकांड में। वे कहते है,—"जथा अनेक वेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।" एक अभिनेता जिस तरह से भिन्न-भिन्न नाटकों में भिन्न-भिन्न पात्रो का अभिनय करता है, ठीक उसी तरह से ईश्वर भी अलग-अलग रूपों में दिखाई देता है। इसलिए एक बार जब बिल्वमंगल जी भगवान राम के मंदिर मे गये तो भगवान के रूप की शोभा को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। पर भगवान के हाथो मे धनुपबाण देख करके उन्होने प्रार्थना की कि, प्रभु ! और सब तो सुन्दर लग रहा है पर यदि धनुष बाण के स्थान पर बंशी होती तो विशेष आनन्द आता। तुरन्त भगवान ने धनुप बाण रख दिया और बंशी ले ली। और जब गोस्वामी जी वृन्दावन गये और उन्होंने भगवान कृष्ण के हाथों मे बंशी देखी तो उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि, महाराज ! आप बड़े सुन्दर लग रहे है पर मुझे तो अच्छा तब लगता जब "धनुष बाण लो हाथ" आपके हाथ मे धनुष बाण होता। और ईश्वर इतना उदार है कि बंशी रखकर धनुष बाण ले लिया। जिसने जो कहा, बिल्वमंगल ने कहा कि धनुष बाण के स्थान पर बंशी ले लीजिए तो

वंशी ले लिया और गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा कि वशी के स्थान पर धनुप वाण ले लीजिए तो धनुष वाण ले लिया। इसलिए मानो भक्तों ने समाधान करते हुये यह कहा कि यह तो हमारे अंत.-करण की आवश्यकता, हमारे अंतःकरण की वृत्ति पर निर्भर है कि हमे कैसा ईश्वर चाहिये ? और इसी का रामायण मे वड़ा सार्थक संकेत किया गया।

हनुमानजी और भगवान श्रीराम का जव मिलन हुआ तो उस मिलन मे ईश्वर का क्या लक्षण है, इस प्रश्न को ले करके पारस्परिक भिन्न-भिन्न मत सामने आए। सुग्रीव ने दूर से भगवान श्रीराम को आते देखा, श्री लक्ष्मण को आते देखा और उनके अंतःकरण मे यह भ्रम हुआ कि शायद वालि ने मेरा वध करने के लिए इन दोनो दोनो राजकुमारो को भेजा है। इसका तात्पर्य क्या है कि अगर दृष्टि को प्रमाण माने तो सुग्रीव की दृष्टि मे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरा वध करने के लिए आ रहे है। लेकिन सुग्रीव के चरित्र मे एक वडा गुणात्मक पक्ष यह है कि जव उनके अंतःकरण में यह भ्रम उत्पन्न हुआ तो उन्होने इस भ्रम को सत्य नही मान लिया। अपितु उन्होंने श्री हनुमान जी की ओर देखा और श्री हनुमान जी की ओर देखकर कहा कि आप ब्राह्मण का वेष वनाकर जाइए और यह पता लगाइए कि ये कौन है ? और साथ-साथ पता लगाने के वाद यदि यह वात सत्य सिद्ध हो तो वही दूर से मुझे संकेत कर दीजिएगा। हनुमान जी ने पूछा—"अगर वालि के भेजे हुए होगे तो आप क्या करेगे ?" तो उन्होने कहा कि अपने पास तो एक ही कला है, क्या ? वोले —

"पठए बालि होहिं मन मैला।
भागौ तुरत तजौ यह सैला॥"

मैने तो जीवन मे सदा भागना ही सीखा है, इस कला मे मै पूरा निष्णात हूं। यहा से भी भाग लूँगा। लेकिन स्वयं देख करके भागे नही, हनुमान जी को प्रमाण मान लिया। लेकिन जव हनुमान जी और भगवान राम का मिलन हुआ तो एक वड़ा अनोखा सवाद हुआ। पहली वार भक्त और भगवान की भेट हुई तो अनोखी वात यह हुई

कि हनुमानजी ने ब्राह्मण का वेप वनाया। और वेप बनाकर ज्यों ही प्रभु के सामने आये तो श्री हनुमानजी ने एक वढ़िया कार्य यह किया कि प्रभु को प्रणाम किया। जव हनुमान जी ने प्रभु को प्रणाम किया तो प्रभु के होठो पर व्यंग्य की हंसी आ गई। प्रभु की उस हंसी में व्यंग्य था, यह हनुमान जी समझ गये। वाद में एकान्त में जब हनुमान जी और प्रभु का वार्तालाप हुआ तो हनुमान जी ने प्रभु से निवेदन किया कि—"प्रथम दर्शन मे मैने जव आपको प्रणाम किया तो, महाराज, आपके होठों पर कुछ व्यंग्य की हंसी आ गई थी, इसके पीछे क्या रहस्य है ? तो प्रभु ने मुस्कुरा करके कहा—कि "हनुमान ! मुझे तुम्हारे नाटक मे एक कमी दिखाई पड़ी, इसलिये हंसी आ गयी।" क्या ? वोले—"तुम ब्राह्मण का वेष वना करके आये थे, तो नाटक में अच्छा तो यही होता है कि जो वेष बनाकर आये, उसका निर्वाह करे। मै क्षत्रिय के रूप मे था और तुम ब्राह्मण के रूप में। तो तुम चुपचाप मेरे सामने आ करके खड़े हो जाते और आशा करते कि मै प्रणाम करूं ! तव तो नाटक ठीक था। पर तुमने प्रणाम कर दिया, इसका अर्थ यह था कि तुम वास्तविक ब्राह्मण नही हो।" हनुमान जी ने प्रभु के चरणो को पकड़ लिया और चरणो को पकड़कर कहने लगे—"प्रभु ! अगर नाटक में असफल है तो दोनों। और नहीं तो दोनो ठीक है।" क्यों ? तो हनुमान जी कहा—"प्रभु ! यह जो आप कहते है कि मै वास्तविक ब्राह्मण होता, तो आपको प्रणाम न करता। तो प्रभु मैं वही कहता हूं कि यदि केवल आप भी वास्तविक क्षत्रिय होते तो आप स्वयं प्रणाम कर लेते। आप तो वड़े मर्यादावादी है। इसका अर्थ है कि हम दोनों अपने स्थान पर ठीक थे। अगर आप अपने को क्षत्रिय मानते होते तो जरूर प्रणाम करते। मुझसे भूल हुई तो क्या हुआ ? मुझसे मर्यादा का पालन नही हुआ तो क्या हुआ ? लेकिन आप तो निश्चित रूप से मर्यादा का पालन करते ! इसका तात्पर्य यह है कि प्रभु ! अगर नकली थे, तो दोनो ही थे। मैं नकली ब्राह्मण और आप नकली क्षत्रिय।" इसीलिये हनुमान जी का व्यंगात्मक वाक्य भी है।—

"को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा।
छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥"

"क्षत्रिय रूप" हनुमान जी ने कहा—महाराज ! मुझे तो लगता है कि आपने क्षत्रिय का रूप ही बनाया है, पर है कोई और। नही तो हनुमान जी कह देते—"राजकुमार," पर उन्होने कहा—"दिखाई तो देते है क्षत्रिय रूप, पर वस्तुत आप क्षत्रिय है नही।" और हनुमान जी ने कहा—"अगर वैसे देखे तो हमारा और आपका नाटक बिल्कुल ठीक है।" क्या ? हनुमान जी ने कहा—"न आपके नाटक मे कोई भूल है, और न मेरे नाटक में कोई भूल है।" हनुमान जी ने उलट करके पूछा—"प्रभु ! क्या ब्राह्मण की परिभाषा किसी राज्य मे यह लिखी गई है कि जो किसी को प्रणाम कर दे वह ब्राह्मण नही है ? ऐसी परिभाषा तो नहीं लिखी गई है !" तो ब्राह्मण की परिभाषा क्या है ? तो हनुमान जी ने कहा कि, "प्रभु ! शास्त्र में ब्राह्मण की परिभाषा की गई है कि "ब्रह्म जानाति स ब्राह्मण." जो ब्रह्म को जान ले, वह ब्राह्मण है।" तो हनुमान जी ने कहा कि, महाराज ! जब मैने आपको प्रणाम किया तो क्षत्रिय समझकर किया कि ब्रह्म समझ के किया ? और अगर ब्रह्म समझ करके किया तो मैं पक्का ब्राह्मण हुआ क्योकि मैने आपको पहचान लिया। और प्रभु उस समय आपने जो व्यवहार किया वह अपने आपको ईश्वर मान करके किया, क्षत्रिय मान करके नही क्योकि आपने मुझे ब्राह्मण के रूप में नही देखा। इसका तो अर्थ है कि आप अपनी सर्वज्ञता का उपयोग कर रहे थे। क्योंकि बाह्य रूप से तो मैं ब्राह्मण जैसा था।" भगवान का तो अनोखा व्यवहार था। हनुमान जी ने तो प्रणाम किया ? प्रभु ने प्रत्यक्ष में प्रणाम भी नही किया और आशीर्वाद भी नही दिया। आशीर्वाद भी भगवान श्रीराम, हनुमान जी को बाद में देते है। तो हनुमान जी ने कहा कि,—"प्रभु ! आप अपने ईश्वरत्व मे स्थित थे और मैं सच्चे अर्थो में ब्राह्मणत्व की जो परिभाषा है आपको जान लेना, उस दृष्टि से ब्राह्मण था। इसलिये इस प्रणाम में न तो मेरी त्रुटि है और न तो आपकी ही त्रुटि है—ईश्वर की दृष्टि मे। क्षत्रिय की दृष्टि से देखे तो नाटक मे भूल है पर ईश्वर की दृष्टि से देखे तो ठीक है। आप तो ब्रह्म के रूप मे स्थित थे।"

हनुमान जी ने जो प्रभु से संकेत किया वह बड़ा सुन्दर है। क्या ?

श्री हनुमान जी प्रभु से पूछते है कि,—"आप कौन है ?" इसका अभिप्राय क्या है ? वही वात जो आपके सामने की जा रही थी कि भगवान को जानने का क्या उपाय है ? व्यक्ति के पास सासारिक वस्तुओं को जानने का जो साधन है, वह व्यक्ति की वुद्धि है। बुद्धि के द्वारा ही हम वस्तुओं का विश्लेषण करते है। पर जिस बुद्धि के द्वारा सासारिक वस्तुओ का विश्लेषण होता है, क्या उस बुद्धि के द्वारा ईश्वर को ठीक-ठीक समझा जा सकता है ? तो रामायण में वड़ी सांकेतिक वात कही गई। और दृष्टात दिया गया रात्रि के अंधकार और दीपक का। भगवान शंकर के विवाह में यह व्यंगात्मक प्रसंग आता है। भगवान शंकर विवाह के लिये जाते है तो अशुभ वेपभूपा धारण किये हुये, मुण्डमाल धारण किये हुये, सर्पो को लपेटे हुये जाते है। मयना आरती उतारने के लिये आती है। लेकिन जब भगवान शिव को इस रूप में देखती है तो भय के मारे थाल उनके हाथ से गिर पड़ता है और वे आरती नही उतार पाती है। अगर भौतिक दृष्टि से देखे तो दूल्हे का इससे वढ करके कोई और अपमान नही हो सकता। लेकिन देवताओं मे से जव किसी ने भगवान शंकर से यह कहा कि जिस दरवाजे पर आपका इतना वड़ा अपमान हुआ, उस दरवाजे पर दुवारा चलना क्या ठीक रहेगा, आप करेंगे यह विवाह ? तो भगवान शंकर ने मुस्कुरा करके कहा कि सम्मान और अपमान तो व्यक्ति की अपनी मान्यता पर निर्भर करता है। भगवान शकर ने कहा कि जव विवाह होता है, तो उसमें जो गाली दी जाती है, वह सम्मान है या अपमान है ? विवाह में गाली को सम्मान क्यो मान लिया गया ? तो सम्मान भी व्यक्ति की अपनी मान्यता ही है कि ऐसे-ऐसे वाक्य, ऐसे-ऐसे सन्दर्भ में कहे जाय, तो सम्मान है और ऐसे वाक्य अगर ऐसे सन्दर्भ मे कहे जाय तो अपमान है। भगवान शंकर ने कहा कि भले ही मयना ने अपनी दृष्टि से अपमान करने की चेष्टा की हो, पर मेरी जो स्वदृष्टि है, इसमें यह रंचमात्र भी अपमान नही है। क्यों ? भगवान शंकर ने कहा कि दिया बुझाने की एक ही पद्धति है। क्या ? वोले रात्रि के अन्धकार में दिया जलाया जाना है। अन्धकार मे यदि दिया जलाए विना व्यक्ति वस्तु को खोजे, तो

लोग उसे मूर्ख कहेंगे। पर इसके पश्चात् अगर प्रातःकाल सूर्य निकल आया और कोई व्यक्ति उस दिए को लेकर, सूर्य को ढूंढने चले कि चलो देखें कि सूर्य निकल आया कि नही निकल आया, तो वह बुद्धिमान है कि मूर्ख है? भगवान शंकर ने कहा कि सूर्य निकल आने के पश्चात् उस दिए के प्रकाश मे सूर्य को नही देखते हैं, वरन उस दिये को बुझा देते हैं। इमी प्रकार से बुद्धि जो है वह दिया है। और बुद्धि के प्रकाश में संसार के समस्त व्यवहार सम्पन्न होते हैं। लेकिन उस बुद्धि के द्वारा हम ईश्वर को प्रकाशित नही कर सकते हैं। जैसे प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर दिये को बुझा दिया जाता है। उसी तरह से ईश्वर मे साक्षात्कार करने के लिये बुद्धि वृत्ति की अपेक्षा नही है। भगवान शंकर ने कहा कि मयना ने भी चाहे जाने में या अनजाने मे, दिया बुझा करके यह मान लिया कि सूर्य का उदय हो गया तो दिये की आवश्यकता नहीं है। क्योकि ईश्वर के प्रकाश में बुद्धि वृत्ति की आवश्यकता नही है। महाराज श्री दशरथ ने, महाराज श्री जनक के दूतो से पूछ दिया कि महाराज जनक ने मेरे पुत्रो को कैसे जाना? तो उन्होंने कहा—

"जिन्ह के जस प्रताप के आगे।
ससि मलीन रबि सीतल लागे ॥
तिन्ह कहं कहिअ नाथ किमि चीन्हे।
देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हें ॥"

महाराज! आपके पुत्रों को कोई बुद्धि-वृत्ति के द्वारा कैसे जान सकता है? सूर्य जो है वह दीपक के द्वारा नही देखा जा सकता, बल्कि सूर्य तो अपने प्राकट्य के द्वारा स्वयं अपनी उपस्थिति का भान करा देता है। इसलिए रामचरित मानस में इसे यो कहा गया कि व्यक्ति अपनी बुद्धि के द्वारा ईश्वर को नहीं समझ सकता, पर ईश्वर स्वयं अपने प्रकाश के द्वारा व्यक्ति की बुद्धि को प्रकाशित करता हुआ, अपना बोध करा देता है। इसका अभिप्राय है कि अगर हम ईश्वर के विषय में जानना चाहें और हम महापुरुषों से पूछें कि ईश्वर कैसा है? तो जिस महापुरुष की जैसी अनुभूति होगी, वह

ईश्वर को वैसा ही बताएगा। तो भक्तों ने सोचा कि ईश्वर से ही क्यों न पूछा जाय—आप कौन हैं ? और हनुमान जी ने यही किया। हनुमान जी ने ईश्वर को पहिचान लिया। हनुमान जी ने सोचा कि जब सामने साक्षात् ब्रह्म खड़ा है तो हम ब्रह्म से ही क्यों न पूछें कि आप अपना परिचय दीजिए। और इसलिए हनुमान जी कहा कि—"को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा" आप ही बताइये कि आप कौन है ? आप स्वयं अपना परिचय दीजिए। और फिर हनुमान जी ने परिचय पाकर भगवान के चरणों को पकड़ लिया।

गीता में जो क्रम कहा गया है एक जिज्ञासु भक्त के लिये "तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया" हमें कुछ जानना हो, तत्व ज्ञान की जिज्ञासा हो तो प्रणाम, सेवा और प्रश्न पूछकर उस तत्व ज्ञान को जानना चाहिये। तो यहा हनुमान जी के चरित्र में ये तीनों विद्यमान है। पहले प्रणाम है, बाद में प्रश्न है और अन्त मे सेवा। गीता में तत्वज्ञान की जो पद्धति बताई गयी है उसी का आश्रय लेते हुये हनुमान जी भगवान राम से पूछते है—"आप कौन है ?" भगवान श्री राघवेन्द्र ने हनुमान जी की ओर देखा और व्यंगात्मक दृष्टि से देखते हुये मानो कहा कि आप बहुत बड़े विद्वान् ब्राह्मण के रूप में आये हुये हैं, तो आप मुझसे क्यों पूछते है कि मै कौन हूं ? आप बताइये कि आपको कैसा लग रहा है कि मैं कौन हूं ? तो हनुमान जी कहने लगे कि मुझे तो ऐसा लग रहा है, क्या ? बोले :—

"की तुम्ह तीनि देव महं कोऊ।
नर नारायण की तुम्ह दोऊ ॥"

और "जग कारण" अब हनुमान जी ईश्वर के लक्षण बता रहे है।

"जग कारन तारन भव भंजन धरती भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार ॥"

क्या आप साक्षात् ईश्वर ही मनुष्य के रूप में अवतरित हुये है ? भगवान श्री राघवेन्द्र ने बड़ा अनोखा विनोद किया। हनुमान जी ने जितने भी ईश्वर के लक्षण बताये, उन सभी लक्षणों को काट दिया।

हनुमान जी ने कहा था—"आप जग कारण है" तो पहला शब्द भगवान श्रीराम के मुंह से निकला अपना परिचय देते हुए—

"कोसलेस दशरथ के जाये"—"अयोध्या के राजा दशरथ का मै पुत्र हू।" तो मैं जग का कारण नही, वल्कि मै दशरथ के कारण हूं। श्री हनुमान जी ने पूछा था—"की तुम्ह अखिल भुवनपति"—क्या इस सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी आप ही है? तो प्रभु ने कहा—"हम पितु वचन मानि वन आये" ब्रह्माण्ड का पति होना तो दूर रहा, अयोध्यापति भी नही वन पाया। पिताजी ने वन जाने की आज्ञा दे दी। जो अयोध्यापति नहीं वन पाया उसे भुवनपति कहना भुवनपति शब्द का अनादर है। तुम मुझे भुवनपति क्यों कह रहे हो? और साथ-साथ हनुमान जी ने कहा था—कि 'भजन धरणी भार'—"धरती का भार दूर करने के लिये आप आये हुए है" तो प्रभु ने व्यंग्य करते हुये कहा—"इहा हरी निसिचर वैदेही"—धरती की बेटी से विवाह हुआ, मै उसे ही नही बचा पाया और राक्षसो ने चुरा लिया तो मै धरती का भार क्या दूर करूंगा? मै तो स्वयं किसी को ढूंढ रहा हूं कि जो मेरा भार हल्का कर दे। भगवान श्री राघवेन्द्र ने हनुमान जी से कहा—हे ब्राह्मण देवता! तुमने मुझे ईश्वर मान करके, ईश्वर के जो-जो लक्षण वताये, उनमे से एक भी मुझमे नही है। लेकिन अव वताओ, तुम्हे क्या लग रहा है? और सचमुच भक्त वाजी मार ले गया। जब भगवान श्री राघवेन्द्र ने यह कहा तो हनुमान जी बड़े प्रसन्न हुए। पहले तो खडे होकर ही प्रणाम किया था, पर भगवान श्री राघवेन्द्र ने ज्यो ही सारे लक्षणो को खंडित कर दिया तो हनुमान जी तुरन्त आगे वढे और "प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना"—भगवान के चरणो को कस करके पकड लिया।

"प्रभु पहचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा जाहि नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना।
देखत रुचिर वेष कै रचना॥
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्हीं।
हरष हृदय निज नाथहि चीन्हीं॥"

हनुमान जी महाराज ने कस करके भगवान के चरणो को पकड़ लिया। आखो मे आसू आ गये और प्रेम से गद्गद् हो रहे है। शरीर में रोमाच हो रहा है। आश्चर्य से भगवान श्रीराम ने हनुमान जी की ओर देखा—"हनुमान! तुमने जितने ईश्वर के लक्षण बताये थे, तुमने स्वयं देख लिया उनमे से एक भी लक्षण मुझमें नही है। तो इस बात से तुमको निराश हो करके लौट जाना चाहिये था कि मुझमे ईश्वर का एक भी लक्षण नही है। लेकिन तुम्हारा व्यवहार तो बिल्कुल भिन्न है। तुमतो पहले मुझको दूर से ही प्रणाम कर रहे थे और अब तो तुमने चरणों को पकड़ लिया है। हनुमान जी ने कहा—"प्रभु! इसका रहस्य है।" क्या रहस्य है? बोले—"महाराज! मै यह जानता हूं कि लक्षण तो जीव की कल्पना है। पर आप पकड़े गये।" क्यों? बोले—"परिचय देने में जब आपने सारे लक्षणों को काटने की चेष्टा की, आप चाहते तो और घटनाओ को बता सकते थे, जिससे कि उन लक्षणो की पुष्टि हो सकती थी, लेकिन जब आपने लक्षणों को काट दिया तो महाराज! मुझे यह ज्ञात हो गया कि आपने चतुराई से यह सिद्ध कर दिया कि लक्षण तो जीव की कल्पना है, पर ब्रह्म स्वयं लक्षणो से परे है। और दूसरी बात महाराज! हमने इसलिये आपको पकड लिया कि ईश्वर के जितने लक्षण मै जानता था, उससे तो यही लगता था कि ईश्वर जो है हमें नही मिल सकता। लेकिन जब आपने परिचय दिया तो मुझे लगा कि अब तो इतना बढ़िया ईश्वर मिला है कि जिसे पकड़ा जा सकता हे। वह ब्रह्म तो पकड़ मे आने वाला नही था, पर यह ईश्वर जो है पकड़ में आ सकता है।" भक्त कहता है भई! हमें अनिर्वचनीय ईश्वर नही चाहिए, हमें दूर वाला ईश्वर नही चाहिए, हमें तो ऐसे ईश्वर की आवश्यकता है जिसे हम अत्यन्त निकट से पकड़ सकें। और हनुमान जी ने प्रभु के चरणो को पकड़ कर सांकेतिक रूप में बता दिया कि भक्तों का ईश्वर तो पकड़ मे आने वाला है। इसका अभिप्राय है कि भक्त का ईश्वर तो जैसी भक्त की मान्यता होगी वैसा ही होगा।

इसलिये इस भक्ति रस की विशेषता क्या है? कि जब हम निर्णय करते है कि हमें ऐसे भगवान की आवश्यकता है, तो उसका

परिणाम क्या होता है—रामायण मे इसके दो दृष्टात दिये गये। एक दृष्टांत दिया गया अभिनेता का और दूसरा दृष्टात दिया गया कल्पतरु का। एक वृक्ष के विषय मे विवाद होने लगा कि यह आम का है कि अमरूद का है; संतरे का है, कि केले का है। और प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में एक-एक फल था। और जिसके हाथ में जो फल था वह कह रहा था कि मैने इस वृक्ष को स्वयं निकट से जा करके देखा है। यह फल मैने इसी वृक्ष से पाया है। यह फल इसी वृक्ष का है। किसी व्यक्ति को निर्णय करने के लिये कहा गया। किसी एक ही समय मे जव भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही वृक्ष को आम कहें, अमरूद कहे, सतरा कहे, केला कहे; तो किसकी वात मानें और किसकी वात न माने? निर्णय करने वाले ने वहुत वढ़िया वात कही कि जिसको लोग अलग-अलग वृक्ष वताएं, अलग-अलग फल वताएं, तो मै समझ गया कि वह कौन सा वृक्ष है? न तो अमरूद, न तो संतरा, न तो केला है, वलिक वह कल्पतरु है कि जिसके नीचे जाकर जिसने जो कल्पना की, उसे वही फल मिल गया। रामायण में सकेत आता है कि मनु ईश्वर को पाने के लिए साधना करने के लिये जंगल में गये। शास्त्रो में ईश्वर के विषय मे जो लक्षण वर्णन किये गये है, वे उन्होने सुने। फिर उन्होने कहा कि यह तो ईश्वर का लक्षण है, पर हमे कैसा ईश्वर चाहिये? इसलिये वहा पर साकेतिक क्रम आता है। मनु साधना करते है, मन्त्र जाप करते है और मन्त्र जाप की पराकाष्ठा मे आकाशवाणी होती है। आकाशवाणी से स्वर सुनाई दिया मनु को—"मांगु मांगु वरु भै नभ वानी"—मागो, मॉगो, क्या मागते हो? तो मनु ने कहा—"मै आपको देखना चाहता हू।" तो भगवान ने कहा—"किस रूप मे देखना चाहते हो, यह तुम वताओ? मैं जिस रूप मे हू, वैसा देखना चाहते हो या फिर जिस में तुम देखना चाहते हो, वैसा मुझे बनाना चाहते हो? तो मनु ने एक शब्द कहा—"महाराज! 'सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनु' महाराज आप तो कल्पतरु है। इसलिये मेरी कल्पना है कि जो ईश्वर मेरी आखो के सामने आए, उसे ऐसा होना चाहिए।" कैसा होना चाहिए? वोले—

"जो सरूपब स सिव मन माहीं।
जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥

जो भुसुंडि मन मानस हंसा ।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा ।।
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन ।
कृपा करहु प्रनतारति मोचन ।।"

और अगला वाक्य आता है—

दंपति बचन परम प्रिय लागे ।
मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे ।।
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना ।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना ।।

भगवान वहां पर थे । लेकिन जब तक मनु ने नही बताया कि मुझे कैसा ईश्वर चाहिये, ईश्वर सामने नहीं आता है ।

हनुमान जी का अभिप्राय था कि महाराज ! आप तो पकड़ में आने वाले थोड़े ही थे । हनुमान जी ने सचमुच ईश्वर के चरणो को ही नही पकड़ा, ईश्वर को पूरी तरह से पकड लिया । और पूरी तरह से पकड़ा माने ? कि—भई ! वैसे ईश्वर स्वतन्त्र है कि परतन्त्र ? फिर वही बात आती है । ईश्वर के लिये शास्त्र कहते है कि ईश्वर जो है वह तो सर्व स्वतन्त्र है । लेकिन ईश्वर के लिये भक्त क्या कहते है ? भक्त कहते है कि भले ही आप परम स्वतन्त्र हों, पर हम तो आपको परतन्त्र बनाने के लिये व्यग्र है । तुलसीदास जी बंधन में बंधे हुए थे । प्रभु ने पूछ दिया—"कैसे यह रस्सी खुलेगी ? कैसे अपने को रस्सी से मुक्त करोगे ?" तुलसीदास जी ने कहा—"महाराज ! रस्सी से छूटने के कई उपाय है । रस्सी काट दी जाय तब भी व्यक्ति मुक्त हो सकता है । अपने शरीर को बढ़ाकर रस्सी तोड़ दे, तब भी व्यक्ति छूट जाता है । लेकिन महाराज ! मुझे तो एक ही उपाय सुन्दर लग रहा है । बोले—

"है श्रुति विदित उपाय सकल सुर केहि केहि दास निहोरे ।
तुलसीदास यह जीव मोह रजु जेहि बांधे सोइ छोरे ।।"

"महाराज ! — जिसने रस्सी को बांधा हो वही खोल दे, तो झंझट ही खत्म हो जाय । आपने बांधा है, आप ही खोल दीजिए !"

तो भगवान ने कहा—लाओ अभी रस्सी काटे देते है। तुलसीदास जी ने कहा—"नही-नही, रस्सी काटिएगा मत, खोलिये।" क्यो ? चाहे काटे, चाहे खोलें, तुम तो वन्धन से मुक्त हो जाओगे। उन्होंने कहा—"महाराज ! अगर आप काट देंगे तो मै तो मुक्त हो जाऊंगा, पर रस्सी वेकार हो जायेगी। और अगर आप खोल देंगे तो मै तो मुक्त हो ही जाऊंगा पर रस्सी का भी उपयोग हो जायेगा।" भगवान ने पूछा, तुलसीदास जी से—"रस्सी का क्या उपयोग करोगे ?" उन्होंने कहा—"महाराज ! जिस रस्सी से आज तक आपने मुझे वाध रखा था, अव आपको वॉध कर देखेंगे कि आप वंधकर कैसे लगते है।" ज्ञानी कहता है—ईश्वर सर्व स्वतन्त्र है, और भक्त कहता है—नही-नही, हमे तो परतन्त्र ईश्वर चाहिये। पकड में आने वाला ईश्वर चाहिये। और यही हुआ।

आगे चल करके देखेंगे कि भगवान तो भुलावा दे रहे थे हनुमान जी को, वोले—ईश्वर का कोई लक्षण मुझमे नही है। पर प्रभु के मुह से जो लक्षण निकल आये, हनुमान जी ने कहा—महाराज ! आपने ये जो नये लक्षण वताये—ये तो हमारे वड़े काम के है। क्या ? अव हनुमान जी ने सचमुच प्रभु को कैसा पकड़ा ? कैसा ईश्वर हमको चाहिये ? हनुमान जी तुरंत प्रभु से कहते है :—

"नाथ सैल पर कपिपति रहई।
सो सुग्रीव दास तव अहई॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे।
दीन जानि तेहि अभय करीजे॥"

—महाराज ! पर्वत पर वन्दरो के राजा रहते है। वे सुग्रीव आपके दास है। आप कृपा करके उनको मित्र वना लीजिये। और उनको अभयदान दीजिए। आश्चर्य से भगवान राम ने हनुमानजी की ओर देखा—अभी-अभी तुम मुझे साक्षात ईश्वर कह रहे थे, तो फिर ईश्वर से आज्ञा मांगी जाती है कि ईश्वर को आज्ञा दी जाती है ? हनुमान जी ने कहा महाराज ! मै भी पहले यही समझता था कि ईश्वर से आज्ञा मागी जाती है, लेकिन आपके मुह से अभी-अभी यह वाक्य

निकला है कि—"हम पितु वचन मानि वन आए" तो मुझे लगने लगा कि यह ईश्वर तो आज्ञा मानने वाला है, आज्ञा देने वाला ईश्वर नहीं है। अगर आप आज्ञा देने वाले ईश्वर होते तो पिता जी का वचन थोडी सुना होता, आप तो स्वयं सारे ब्रह्माण्ड के पिता है। महाराज! आप तो स्वयं अपना परिचय देकर बंधन में बंध गये। हनुमान जी कहते है—पर्वत पर वन्दरो के राजा रहते है, आप उनके पास चलिये। प्रभु पूछ सकते है कि मै चलू कि वह आवे ? तो हनुमान जी ने कहा कि—"प्रभु ! अगर आप अपना परिचय ईश्वर के रूप मे देते, तो मै सुग्रीव को बुलाता कि आइए ईश्वर का स्वागत कीजिए। पर आपने जव यह कहा कि सीता जी खो गई है और मै उन्हे खोजने निकला हू, तो महाराज ! जब आप खोजने ही निकले है तो फिर आप ही सुग्रीव को खोजिये। वह भी विचारा भटका हुआ है।"

हनुमान जी ने एक शब्द प्रभु का पकड़ लिया। हनुमान जी ने कहा—प्रभु ! आपने अपना परिचय नए प्रकार से दिया। भगवान श्री राघवेन्द्र ने कह दिया था अपना परिचय देते हुये कि, लक्ष्मण मेरे भाई है। सीताजी मेरी पत्नी है। दशरथ जी मेरे पिता है। भगवान राम ने जव इतना परिचय दिया तो हनुमान जी ने अगला वाक्य जोड़ दिया-सुग्रीव दास है, उन्हे मित्र वना लीजिये। हनुमान जी की चतुराई क्या है ? भक्ति में भगवान के पाच नाते माने जाते है--दास्य, सख्य, वात्सल्य, शृंगार और शान्त। तो भगवान राम ने तीन की ओर सकेत किया। वात्सल्य भाव का सकेत किया—दशरथ के पुत्र के रूप मे। शान्त भाव का संकेत किया—लक्ष्मण के भाई के रूप मे। और सीता जी के साथ अपने पति-पत्नी का सम्वन्ध के रूप में शृंगार भाव का संकेत किया। पाच भावो मे तीन भावो को प्रभु ने वता दिया। हनुमान जी ने देखा यह वड़े काम का ईश्वर है, क्या ? वोले, लगता है आप संसार से सम्वन्ध जोड़ने के लिये आए है—और इसीलिये आप कह रहे है कि श्री लक्ष्मण जी मेरे भाई है, श्री दशरथ जी के आप पुत्र है और श्री सीताजी के पति है। तो महाराज तीन नाते तो आपने वता दिए, लेकिन दो नाते वाकी रह गये बताने से। एक तो आपने अपना यह नाता नही बताया कि आपका दास कौन है ? और दसरा आपने यह नही वताया कि आपका मित्र कौन है ? तो उस कमी

को मैं पूरा किए देता हूं क्या ? बोले—आप चल करके सुग्रीव से मित्रता कर लीजिये। हनुमान जी को प्रभु ने पकड़ लिया,—"तुमने अभी तो कहा था कि सुग्रीव 'दास' है। तो अगर 'दास' को मै मित्र बना लूंगा तो ये तो कोई पद्धति नही है। 'दास' को तो 'दास' ही रहने देना चाहिये।" हनुमान जी ने कहा—"घबराइये नही, मेरी बात मान लीजिये। सुग्रीव को आप 'मित्र' बना लीजिये, आपको 'दास' की कमी नही रह जाएगी।"—कैसे ? बोले—"जब आप उनको मित्र बना लेगे तो जो जगह खाली हो जाएगी, उसको मुझे दे दीजिएगा। तो 'दास' भी आपको मिल जायेगा। और भक्ति के पांचो भाव भी पूर्ण हो जायेगे।

इस तरह से महाराज—आप स्वयं अपने लक्षण बताकर पकड़ मे आ गये, अब हम जो-जो चाहे, वही-वही करते चलिये। हमारी इच्छा के अनुकूल चलते रहिये। और यही तो हुआ। भगवान राम जैसा-जैसा हनुमान जी आदेश देते है, वही करने लगते है। "लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई" भगवान श्री राम और लक्ष्मण से कहा—आप दोनो जन मेरी पीठ पर बैठ जाइये। फिर प्रभु ने देखा—ब्रह्म को पीठ पर बैठाओगे ? हनुमान जी ने कहा—प्रभु ! यह मै थोड़ी कह रहा हूं। आप ही ने तो कहा है कि आप दशरथ के पुत्र है। और जब आप दशरथ के पुत्र बने होगे, तो उन्होने आपको गोदी में उठाया होगा कि नही ? यह तो आपने स्वय ही बताया है कि यह उठने वाला ब्रह्म है। और यह हल्का ब्रह्म है इसलिये इसको उठाया जा सकता है। प्रभु ने हनुमान जी से विनोद किया कि अच्छा अगर दशरथ जी ने गोद में उठाया तो तुम भी गोद में उठा लो। हनुमान जी ने कहा—महाराज ! पीठ मे उठाने और गोद मे उठाने मे अन्तर है। जिस व्यक्ति को गोद मे लिया जाय उसे गोद मे लेने वाले को पकड़े रहना पड़ता है। और जब किसी को पीठ पर बैठाया जाता है तो पीठ पर जो बैठता है वही पकडे रहता है ढोने वाले को। तो महाराज जिससे मित्रता करने के लिये मै ले चल रहा हूं, उसे आपको ही पकड़े रहना पड़ेगा, वह आपको पकड़ने वाले नही है, यह जान लीजिये। इसलिये अभ्यास कर लीजिये। और यह ब्रह्म के जीव को पकड़ने का अभ्यास है।

वैसे आप देखिये तो भगवान कोई नन्हें बालक है क्या ? किशोर है क्या ? भगवान जो कौशल्या के गर्भ से नन्हे बालक के रूप मे जन्म लेते है, उसका अभिप्राय क्या है ? भक्तो ने कहा—बालक बना देगे भगवान को, तभी तो अपनी इच्छा के अनुकूल इन्हें पाठ पढ़ा सकेंगे। इन्हे जैसा चाहें वैसा पाठ पढ़ा करके, अपनी इच्छा के अनुकूल चलाने का प्रयास करेंगे। इसलिये रामचरित मानस मे कहा गया—

"निर्वान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि वस करी।"

—भक्त ने वस्तुत: जो स्वतन्त्र ईश्वर था, उसको अपने वश में कर लिया। और अपनी इच्छा के अनुकूल ईश्वर को, अपने हृदय में जैसे ईश्वर की कामना थी उसको पूर्ण किया। हमुमानजी ने कहा—ब्रह्म के मैंने लक्षण वताए, पर जव आपने यह कहा कि मुझमें ईश्वर के कोई लक्षण नहीं है, तो मै आनन्द में डूव गया। क्यो ? वोले—आप कह रहे है कि ईश्वर का कोई भी लक्षण मुझमें नही है, पर मैं माने लेता हूं कि आप ईश्वर है, कृपया आप भी ध्यान रखिएगा कि मुझमे भक्त का कोई लक्षण न मिले तो भी भक्त मान लीजिएगा। आप परीक्षा इत्यादि मत लीजिएगा। हम दोनों, महाराज इसी आधार पर यदि जुड़ेंगे तो कोई संभावना अलग होने की नही है। आप देखेंगे—रामायण में जितने प्रसङ्ग है, उनमें क्या है ? ज्ञानी लोग इस विवाद में उलझे रह गए कि ईश्वर कैसा है? और भक्तो ने कहा कि भाई ! ज्ञानियों के अनुसार तो ईश्वर अनिर्वचनीय है।

कुलिसाहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि।।

कभी लगता है अत्यधिक कठोर ईश्वर है। कभी लगता है ईश्वर उदार है। किसी व्यक्ति को देखे तो लगता है कि ईश्वर कितनी उदारता से दे रहा है। और किसी व्यक्ति को देखे तो ऐसा लगता है ईश्वर कितना कृपण है। ईश्वर का क्या लक्षण वताएँ ? कोमल है कि कठोर है; उदार है कि कृपण है; हँसने वाला है कि रोने वाला है ? सारे लक्षण जो है वस्तुतः आपस में ही कट जाते है। इसलिए

भक्तों ने क्या चतुराई की ? भक्तों ने कहा महाराज ! हमें हमारी इच्छा के अनुरूप ईश्वर चाहिए और जिस भक्त ने जैसा ईश्वर चाहा उसी रूप में उसे प्राप्त हुआ।

मारीच ने कल्पना किया कि वाण लेकर के मेरे पीछे-पीछे प्रभु दौड़ेंगे—

"मम पाछे धर धावत धरें सरासन बान।"

मारीच से कोई पूछ दे—तुम क्या कोई सर्वज्ञ हो जो समझ गए कि भगवान तुम्हारे पीछे दौड़ेंगे ? भगवान तो सर्व शक्तिमान है। उन्होंने तो एक ही वाण में तुम्हे समुद्र के पार फेंक दिया था। इसी प्रकार श्री सीताजी जब कहेंगी तो भगवान राम बैठे-बैठे तुम्हारा वध कर देंगे। पर यह जो तुम कह रहे हो कि तुम्हारे पीछे दौड़ेंगे, तुम्हे इसका ज्ञान कैसे हुआ ? तो मारीच का वाक्य यही है—"भगति अबसहि वश करी" अगर वह स्वतत्र भगवान होते तो न दौड़ते। पर जब वे परतंत्र भगवान हैं और मेरे मन ने कल्पना की है कि वे मेरे पीछे दौडेंगे, तो मैं उन्हे अपने पीछे दौड़ता हुआ ही देखूँगा ! और भगवान श्री राम सचमुच वही तो करते हैं जो मारीच चाहता है। और केवट भी ठीक यही बात कहता है—महाराज ! ज्ञानी जैसे ईश्वर की खोज करते हैं, मुझे उनसे कुछ भी लेना देना नही है। लेकिन जब आप ईश्वर के रूप मे आ गए तो मैंने समझ लिया। मैं आपके मर्म का समझ गया क्या ? कि न तो आपको पार जाने की समस्या है न आपके सामने कोई और समस्या है। क्योंकि आपका लक्षण तो यह है कि आपने ब्रह्माण्ड को दो पग में नाप लिया था। शास्त्र तो आपका लक्षण बताते हुए कहते है कि आप सर्वशक्तिमान है। परन्तु आप जब गंगा के किनारे खड़े हो गए, तो आपका भेद खुल गया। क्या ? बोला—आप पार उतारने के लिए बेचैन नही है, बलिक मुझे बड़प्पन देने के लिए बेचैन है। और जब बड़प्पन देने आए है तो फिर जैसा-जैसा मै कहूं वही-वही करते जाइए। भक्तो की मान्यता के अनुकूल आपके लिए उचित यही होगा कि आप की इच्छा के अनुकूल मैं न

चलूं वल्कि ग्राप ही मेरी इच्छा के ग्रनुकूल चलें। सचमुच केवट भगवान के इस मर्म को जान गया है कि ईश्वर भक्तों के हृदय की भावना के ग्रनुकूल चलता है। ग्रौर जिसने इस रहस्य को जान लिया है वह ईश्वर को ग्रपनी इच्छा के ग्रनुकूल चलने को वाध्य करता है—

जो जेहि भायँ रहा ग्रभिलाषी।
तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी ॥

केवट प्रसग का एक रहस्य यह है। इसके वाद की चर्चा हम कल करेंगे। ग्राज, वस इतना ही।

॥ वोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ॥

श्री राम: शरण मम्

४

आइये, हम लोग मन. शरीर से गगा के किनारे चलें और गंगा के किनारे एक अनोखे भक्त केवट और भगवान श्रीराम के बीच में जो विलक्षण वार्तालाप चल रहा है, उसका रसास्वादन करे । केवट प्रभु से गंगा पार उतारने के लिये आड़ी-टेढ़ी भाषा में अपनी कुछ अनोखी शर्ते रख देता है। वह स्पष्ट स्वर में कह देता है कि प्रभु ! यदि आपको पार जाना है तो पहले मेरी शर्तो को पूरा करना होगा। भगवान श्री राघवेन्द्र केवट की प्रेमभरी अटपटी वाणी सुन करके आनन्द मे भर उठते है, और विहँसते हुये विनोद भरी दृष्टि से भगवान श्रीराम ने, लक्ष्मण जी और जनकनन्दिनी की ओर देख करके मानो उन्हे निमन्त्रित किया कि आइये, आइये, आप लोग भी केवट की वाणी के पीछ जो प्रीति है उसका रसास्वादन कीजिए। और फिर जैसा केवट ने कहा था, भगवान श्रीराम ने केवट को आदेश दिया और केवट चरण प्रक्षालन करके प्रभु को पार उतार देता है।

इस प्रसङ्ग मे यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि केवट ने जिस भाषा का प्रयोग किया इसके पीछे उद्देश्य क्या है ? यदि यह कहा जाय कि वह भगवान श्रीराम के चरणों को धोना चाहता था तो इस के लिये तो इस प्रकार की भाषा की कोई आवश्यकता नही थी। अरे ! कठौते में जल लेकर के आता और भगवान के चरणों को धोने की चेष्टा करता, और उस समय यदि भगवान श्रीराम रोकते तो भले ही केवट यह कहता कि मैं आपका चरण क्यो धोना चाहता

हूं ? तो, यदि केवट को चरण धोने की ही इच्छा है तो ऐसी स्थिति में जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग केवट ने किया, उसकी कोई आवश्यकता नही थी और, केवट ने तो अपनी इस वात को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया ! केवट भगवान श्रीराम से यह कहता है कि यदि आप पार जाना चाहते है तो मै चरण धोने के पश्चात ही आपको पार कराऊँगा। भगवान श्रीराम ने केवट की ओर देखा—"तो फिर समस्या क्या है ? मैंने तो तुम्हे चरण धोने के लिये नही रोका।" तो केवट कहता है कि—"महाराज ! रोकने का प्रश्न नही है—

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू।
मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

आप अपने मुह से यह कहिये कि मेरे चरण धोओ ! मुझे चरण धोने की कोई आवश्यकता नही, अगर आवश्यकता है तो आपको है, और उसे आप स्वीकार कीजिए।" तो वड़ी विचित्र वात है। गोस्वामी जी ने वडी सुन्दर वात लिखी है कि, भगवान श्रीराम जव गंगा के तट पर खडे हुये है और केवट से उन्होंने नौका की याचना की, तो गंगा जी वड़ी प्रसन्न हुयी। क्योकि केवट निरन्तर वही निवास करता है और गंगा को लगा कि आज केवट के जीवन की चरम साधना सफल हो गयी, स्वयं साक्षात् प्रभु आ गये। लेकिन, जव केवट वार्तालाप करने लगा तो गंगा भयभीत हो गयी। गंगा को लगा कि, लगता है यह घर आये हुये सौभाग्य को लौटाने पर तुला हुआ है। जव केवट ने इस प्रकार से भगवान श्रीराम से कहा कि, मैं विना चरण धोये पार नही उतारूँगा और चरण भी विना कहे नही धोऊँगा, तो गंगा को अपनी पुरानी कथा याद आ गयी। गंगा का जन्म कव हुआ था ? तो आपने पुराणो में वह कथा पढ़ी और सुनी होगी कि वलि ने, सारे संसार पर विजय प्राप्त करने के वाद स्वर्ग पर भी विजय प्राप्त कर ली। इसके पश्चात् उसने एक महान यज्ञ का आयोजन किया। और, जव यज्ञ सविधि रूप से सम्पन्न हो रहा था तो अचानक एक तेजस्वी ब्रह्मचारी उस यज्ञ मण्डप में आया जो वड़ा ही नन्हां सा था। वलि ने स्वागत किया और स्वागत करके ब्रह्मचारी से निवेदन किया कि, आदेश दीजिए ! आप क्या चाहते

है ? लेकिन, बलि ने उस ब्रह्मचारी को पहिचाना नहीं। पहिचान लिया शुक्राचार्य जी ने, जो बलि के गुरु थे। लेकिन कभी कभी पहिचान लेना ही तो यथेष्ट नही होता है।

श्री रामचरित मानस में महाराज दशरथ के चरित्र के सन्दर्भ मे यह बात आती है कि महाराज श्री दशरथ सिंहासन पर बैठे हुए दर्पण देखते है। और दर्पण में जब वे अपने मुकुट को देखते है तो उस मुकुट को बीचो-बीच समता में ले आते है। उसके पश्चात् कान के पास के सफेद बालो को देख कर के उन्हे ऐसा लगा कि, बाल मुझसे यह कह रहे है कि अब मुकुट को केवल सीधा करने से ही काम नही चलेगा, अब यह राज्य सत्ता जो है, उसे आप श्री राम को सौंप दीजिए। तो महाराज दशरथ उसके पश्चात् मंत्रियों से सम्मति लेते है, पर आगे साङ्केतिक बात यह आती है कि वे गुरु वशिष्ठ के पास जाते है। और गुरु वशिष्ठ से यह निवेदन करते है कि, मेरे अन्तःकरण में श्री राम को सिंहासन पर अभिषिक्त करने की इच्छा है। आप क्या कहते है ? तो यह जो प्रसङ्ग है, इसमे साधना का समग्र क्रम है। दर्पण देखना, आत्म निरीक्षण है। यह साधक का कर्तव्य है। साधक का कर्तव्य है आत्मनिरीक्षण करते हुए अपनी कमी को देखना। तो महाराज श्री दशरथ ने जब दर्पण के माध्यम से अपनी कमी की ओर दृष्टि डाली तो उनको ऐसा लगा कि, मेरे जीवन मे संतुलन नहीं रह गया है। मेरा मुकुट टेढा हो गया है। इसलिए मुझे समत्व में स्थित हो जाना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि दोष दर्शन के बाद हमें अपनी कमी दिखाई दे और, कमी दिखाई देने के पश्चात् भी "बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा" का अर्थ है कि समत्व मे स्थित होने की प्रेरणा मिले। पर समत्व के पश्चात् भी जो उनके अन्त.करण में दूसरी वृत्ति आती है, वह क्या है ? जो कान के पास के सफेद बाल थे, उन्होने समर्पण का सन्देश दिया। तो पहले स्वदोष दर्शन, फिर आत्मनिरीक्षण, समत्व मे स्थिति, फिर समर्पण की प्रेरणा होने के पश्चात् जब वे गुरु वशिष्ठ के पास जाते है तो इसका अभिप्राय है कि सच्चे अर्थो मे जो समर्पण होता है वह गुरु के माध्यम से ही होता है। गुरु का वरण इसीलिए किया जाता है कि वे जीव को, ईश्वर के प्रति समर्पित करा दे। महाराज दशरथ ने गुरु वशिष्ठ से उसी समर्पण का

निवेदन किया। और गुरु वशिष्ठ ने सच्चे गुरु के रूप में तुरत महाराज दशरथ से यही कहा। महाराज श्री दशरथ के मुंह से यह वाक्य निकला कि आप यदि कहते है तो पञ्चांग में देखकर मुहूर्त बताइए, जिस मुहूर्त में हम श्री राम को सिंहासन पर बिठाएं! तो सच्चे गुरु ने क्या उत्तर दिया? सच्चे गुरु ने कहा कि सांसारिक कार्य करने के लिए तो मुहूर्त देखना ठीक है लेकिन, ईश्वर की भक्ति कब करें? ईश्वर को समर्पण कब करें? यदि यह मुहूर्त को देखकर व्यक्ति करने की सोचे कि भक्ति बढ़िया मुहूर्त में करेंगे, तो इसका अर्थ तो यह है कि वस्तुतः, ईश्वर की भक्ति के लिए जो उतावलापन होना चाहिए वह उसमे नही है। इसलिए गुरु वशिष्ठ तुरत आदेश देते है कि,—"बेगि बिलम्ब न करिय नृप" बस देर मत कीजिए!

बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥

तो यहाँ पर महाराज दशरथ से लेकर के गुरु वशिष्ठ की प्रेरणा तक साधना का समग्र क्रम है। और बलि के प्रसङ्ग में यहां पर अन्तर है। बलि ने पहले यज्ञ किया और बलि की यज्ञशाला में भगवान आए। इसका अभिप्राय क्या हुआ? कि यज्ञ जो है वह कर्मयोग की सर्वश्रेष्ठ परिणत है। हमारी सारी क्रिया, हमारा सारा जीवन, यज्ञ के रूप में परिणत हो जाय और यज्ञ के रूप में परिणत होने का अभिप्राय यह है कि, विजय के द्वारा बलि ने सारे संसार और स्वर्ग की वस्तुओ को प्राप्त किया। पर, जब व्यक्ति यज्ञ करता है तो यज्ञ में वितरण करता है, देता है। तो वितरण की, दान की, जो इच्छा है, वह बलि के अन्तःकरण में उत्पन्न होती है। इसका अभिप्राय यह है कि विजय के बाद यदि संग्रह की इच्छा बलि के मन में होती तो इसका अर्थ होता कि, "जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई" भई! या तो मनुष्य के मन मे अत्यधिक लाभ होने पर लोभ और भी बढ़ता जाता है और संग्रह की ओर प्रवृत्ति होती जाती है तथा व्यक्ति निरन्तर उसी दिशा में संलग्न हो जाता है। और या तो लाभ के बाद व्यक्ति के अन्तः-करण में वितरण की इच्छा होती है। अगर, लाभ के पश्चात् लोभ वृत्ति आई, लोभ वृत्ति का अतिरेक हुआ, तो व्यक्ति सही दिशा में

नही मुडा। पर यदि व्यक्ति लाभ के पश्चात् यज्ञ की दिशा में मुड़ गया, जैसा वलि ने किया, तो उस यज्ञ की सार्थकता है। अव आप देखिये, कि ये वामन भगवान जो है, वे क्या है? पौराणिक भापा मे तो ऐसी कथा आती है कि इन्द्र ने भगवान से निवेदन किया कि आप कृपा करके मेरा स्वर्ग का राज्य, जो वलि ने छीन लिया है, मुझे किसी तरह से वापस दिला दीजिए! तो ये वामन भगवान जो है, इसीलिये इन्द्र के छोटे भाई के रूप में जन्म लेते है। यह साङ्केतिक भापा है, इसलिये भगवान है तो सवसे वडे, पर उनका एक विचित्र नाम उपेन्द्र भी है। तो इन्द्र माने? जो 'मुख्य' है वह इन्द्र है और उप-इन्द्र जो है, वे भगवान है। पढ करके वडा आश्चर्य होता है कि इन्द्र हो गये है वडे, और भगवान हो गये 'छोटे'। पर इसका अभिप्राय क्या है? इसको रामचरित मानस की साङ्केतिक भाषा मे यही कहा गया है कि, भाई! केवल भगवान को स्वीकार कर लेना ही जीवन मे यथेष्ट नही है। प्रश्न यह है कि हम भगवान से कौन सा नाता जोड़ना चाहते है? लक्ष्मण जी के चरित्र में आपको मिलेगा कि श्री लक्ष्मण जी, भगवान श्रीराम के छोटे भाई वन करके उनके पीछे चलते है। और यहाँ भगवान जो है, वे इन्द्र के छोटे भाई वन करके उनके पीछे चलते है। वड़ा भाई आगे चलेगा, छोटा भाई पीछे चलेगा। तो इन्द्र के और लक्ष्मण जी के स्वभाव मे क्या भेद है? आप देखेगे कि इन्द्र विषयी है, भोगी है, और श्री लक्ष्मण को साक्षात् वैराग्य के रूप मे याद किया गया है—

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु वैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥

और इसका अर्थ क्या है? वडा मीठा व्यङ्ग है! वोले भगवान विपयी के छोटे भाई है और वैराग्यवान के वड़े भाई हैं! और इस का अर्थ क्या हुआ? कि, विषयी भगवान से कहता है कि आप मेरे पीछे-पीछे चले आइये! जो-जो मेरी इच्छा हो उसको पूरी कीजिए। भगवान छोटे रहेगे तभी तो सुविधा रहेगी आज्ञा देने मे! और वैराग्य कहता है भगवान मे कि नही, नही, आप वड़े है, आप जिधर ले चले उधर मै चलूँगा! तो यह दोनों की प्रकृति मे अन्तर है।

और वही इन्द्र के चरित्र में भी दिखायी पड़ा। इन्द्र ने आदेश दिया कि, आप मेरा खोया हुआ स्वर्ग वलि से वापस दिला दीजिए! तो कहा जाता है कि भगवान, वलि की यज्ञ शाला में, वलि को छलने के लिए गये। शब्द तो यही कहा गया, पर सचमुच छला कौन गया। वलि छला गया कि इन्द्र छला गया? क्योंकि, अन्त में जव भगवान ने बंटवारा किया तो वड़ा विचित्र बंटवारा किया। उस कथा का अन्तिम तत्व जो है, वह वड़ा साङ्केतिक और विलक्षण है।

यज्ञ कर्म के वाद भगवान का आगमन जो था, यही यज्ञ की पूर्णता है। और इसका अभिप्राय यह है कि कर्मयोग की समग्रता ईश्वर प्राप्ति में है। ईश्वर ही आकर के हमारे यज्ञ को पूर्णता की ओर पहुंचावे तो ही सच्चे अर्थों में हमारा यज्ञ पूर्ण हो सकता है। विना ईश्वर की कृपा के व्यक्ति के जीवन का संकल्प और यज्ञ कर्म पूरा नही हो सकता है। लेकिन, यहाँ वीच में थोड़ा सा अवरोध आ गया। अवरोध क्या आ गया कि वलि ने पहिचाना नही और शुक्राचार्य जी ने पहिचान लिया! लेकिन, ज्यों ही वलि ने यह कहा कि ब्रह्मचारी जी! जो आप मांगेगे वह मैं दूँगा, तो तुरत धीरे से अपने यजमान का हाथ पकड़कर दवाया शुक्राचार्य जी ने। उसने घूमकर गुरु की ओर देखा तो शुक्राचार्य ने उससे कहा—"एकान्त में चलकर जरा मेरी वात सुन लो!" और फिर एकान्त में ले जाकर उन्होंने वलि से पूछा, कि तुम जानते हो यह ब्रह्मचारी के रूप में कौन आया है? वलि ने कहा कि महाराज! मै तो नही पहिचानता! वोले, "ये साक्षात् भगवान है!" वलि तो गद्गद् हो गया! भगवान यज्ञ में पधारे है? शुक्राचार्य ने कहा,—"गद्गद् मत हो। अरे मूर्ख! ये तुम्हारी सारी सम्पत्ति छीनने आये हुये है, तू लौट और जाकर कह दे कि मैं आपको नही दूँगा।" पर आप देखिए यहाँ पर गुरु से भूल हुयी पर शिष्य जो था वही सही दिशा में था। वस्तुतः, वलि तो प्रहलाद का पौत्र था इन्द्र को जीत लेना दैत्यवृत्ति थी, पर इन्द्र को जीतने के पश्चात् भी भक्त प्रहलाद के पौत्र होने का जो दिव्य संस्कार है, वह वड़ा विलक्षण है। तुरंत उसने कहा, "गुरुदेव! मैं तो उन्हें विना पहि-चाने ही देने के लिये कह रहा था और जव भगवान ही लेने के लिए

आए हुये है तब तो मैं जरूर दूंगा। उसने कहा, "गुरु जी! यह तो सोचिए, भगवान को मॉग करके लेने की क्या आवश्यकता है? वे चाहे तो छीन के भी ले सकते है। यह तो उनकी कृपा है, कि मुझको दानी की उपाधि दिलाने के लिये आये हुये है। इसीलिए, इससे बढ़कर के जीवन में सुअवसर नही मिलेगा।" शुक्राचार्य बड़े क्रुद्ध हुये! और क्रोध मे आकर के बलि को शाप दे दिया कि,— "जा तेरी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय!" बलि मुस्कराने लगा! बोला, 'महाराज! देख लीजिए ईश्वर का संकल्प! अन्त में ईश्वर सम्पत्ति छीनने आया, आप बचाने चले थे! लेकिन, आपके मुंह से भी शाप निकला तो यही निकला, कि—'तेरी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय!'" इसका अर्थ यही है कि जब ईश्वर कोई कार्य कराना चाहता है तो उसका सकल्प रोका नही जा सकता।

बलि ने वामन भगवान से कहा कि—"मागिए!" भगवान ने कहा,—"तीन पग भूमि दो।" बलि ने कहा—"इतना कम!" भगवान ने कहा,— "पहले इतना तो दे दो!" और जब भगवान ब्रह्माण्ड को नापने लगे, तो अपना चरण जो है वह, आकाश की ओर बढाया। आप कृपा करके ध्यान रखेगे, कि यह जो यज्ञ मे आहुति दी जाती है, तो सबसे अन्तिम आहुति क्या है? यज्ञ में अन्न की, तिल की, घी की, चावल की, आहुति दी जाती है, पर सबसे बड़ी अन्तिम आहुति है—अपनी ममता की आहुति देना। पहले वस्तु की आहुति, पर वस्तु की आहुति का महत्व नही है, महत्व है जिस वस्तु में अभी तक हमारी ममता जुड़ी हुयी थी कि अन्न मेरा है, चावल मेरा है, ये तिल मेरा है, तो जब हम उस वस्तु को अर्पित करते है तो वस्तुतः, वह आहुति वस्तु की नही है। वह ममता की आहुति है। और ममता की आहुति के पश्चात् एक ही डर है कि अपनी वस्तु को जब व्यक्ति यज्ञ कुण्ड मे डाले तो कही ऐसा न हो कि व्यक्ति की ममता तो कम हो, पर अहम्ता बढ़ जाय। अहम्ता बढ़ जाय माने? "मै कितना महान् हूं कि मैने इतनी ममता छोड़ दी।" इसलिये अन्तिम आहुति ये दो है। पहले यज्ञ के द्वारा वस्तुओं की ममता की, और ममता के पश्चात् फिर अहम्ता की। जब यज्ञ मे आहुति दी जाती है तब यज्ञ

पूर्ण होता है। और वहीं पर व्यक्ति के अन्तःकरण में समर्पण की सच्ची वृत्ति उत्पन्न होती है। तो भई! ये अहम्ता और ममता का जों त्याग है वह कौन करेगा ? ये किसके द्वारा सम्भव है ? ये वलि की यज्ञशाला में जो वामन पधारे हुये है, वे वस्तुतः सच्चे अर्थों में वलि के यज्ञ को पूर्णता प्रदान करने के लिये आये हुये है। भगवान ने सोचा यह हमारे महानत्म भक्त प्रह्लाद का पौत्र है और इसने इतने महान कर्म का सम्पादन किया, अव इसके जीवन से अहम्ता और ममता को भी मिटाना चाहिए। तो ममता को मिटाने के लिये भगवान कहते हैं कि मुझे तीन पग भूमि दो, और जिस समय वलि ने कहा—"ले लीजिए,—" भगवान अचानक छोटे से वड़े हो गये, और इतने वड़े हुये कि उन्होंने अपना चरण ऊपर की ओर वढ़ाया, और वह जो भगवान का एक चरण था वह ब्रह्मा के लोक में पहुंच गया। और ब्रह्मा के लोक में जव पहुंचा, तो ब्रह्मा जी ने पग के नख को देखते ही कमण्डल में जल लेकर के भगवान का चरण धो लिया, और जव उन्होंने चरण धो लिया, तो वही गंगा का सवसे पहले जन्म हुआ।

अव यह बात रामायण में भक्ति योग के सन्दर्भ में भी बड़े महत्व की है। कर्मयोग के बाद गंगा को भक्ति का रूप माना गया। तो इस का अभिप्राय है कि कर्म की समाप्ति के पश्चात् ही व्यक्ति के हृदय में भक्ति का उदय होता है। गोस्वामी जी ने दूसरे रूप में भी इसे रखा है। वे कहते है कर्म यमुना है और भक्ति गंगा है। तो इसका भी तात्पर्य यही है कि गंगा और यमुना प्रारम्भ में दोनों की धाराएं हिमालय से अलग-अलग प्रवाहित होती है। लेकिन, अन्त में तीर्थ-राज प्रयाग में पहुंच करके यमुना गंगा में अपने को विलीन कर देती है। इसका अभिप्राय है कि समग्र कर्मयोग जो है जव भगवान के प्रति अर्पण हो जाय, भगवान के प्रति विलीन हो जाय, तभी सच्चे अर्थों में भक्ति का उदय होता है। यही गंगा का प्राकट्य है। जव वलि की ममता को भगवान ने नाप लिया और वलि की ममता को ही नहीं नाप लिया, भगवान ने अनोखा खेल किया—दो पग में सारे ब्रह्माण्ड को नापने के वाद वलि से यह कहा कि तीसरा पग और

दो ? तो वलि कहने लगा कि, 'महाराज ! अव तो कुछ नही वचा हुआ है ।' भगवान ने कहा कि, तुमने तो तीन पग देने को कहा था ? नही दिया तो वन्धन मे वाधूंगा, और भगवान ने रस्सी से जकड़ कर वलि को जमीन पर डाल दिया । इन्द्र वड़ा प्रसन्न, कि मेरा शत्रु जो है, आज बँध गया । पर विचित्र व्यङ्ग है न ? इतना वड़ा दान करने के पश्चात् वेचारा वँध गया ! दैत्य लोग तो सिर पीटने लगे । वोले, आये तो थे छोटे वनकर और लेने लगे तो इतने वड़े वन गये । तीन पग छोटे वामन को दिया था कि इनको दिया था और उसके पश्चात् भी कितना वडा अन्याय है कि दो पग मे सव कुछ ले लेने के पश्चात् भी प्रशंसा करे वलि की, उल्टे वाँध दिया ? लेकिन, उस वाधने का फल कितना सुन्दर हुआ ? वलि को तुरन्त सत्य का साक्षात्कार हुआ, और वलि ने यही कहा 'प्रभु ! अव तो मेरे पास कुछ भी नही वचा हुआ है ? मैं ही वचा हुआ हूं, अव मुझे ही नाप लीजिए !' तो भगवान ने वलि के मस्तक पर चरण रखा और सच मुच तीसरा पग पूरा हो गया । भगवान तुरन्त उतरे, मुस्करा करके उन्होने वलि को वन्धन से मुक्त कर दिया । भगवान का तात्पर्य था कि जव तक ममता के साथ-साथ अहम्‌ता की भी आहुति न दी जाय, तव तक यज्ञ पूरा नहीं होता है । तुम्हारी ममता भी चली गयी, तुम्हारी अहम्‌ता भी चली गयी, इसलिये तुम्हारा यज्ञ सच्चे अर्थो मे पूर्ण हुआ । और भगवान ने बँटवारा कितना सुन्दर किया, आप देखिए, इन्द्र को तो स्वर्ग लौटा दिया और इधर वलि से भगवान पूछने लगे कि "तुम्हे क्या दे ?" वलि वडा चतुर निकला—क्या माँगा उसने ? भगवान ने एक को तो प्रसन्न होकर स्वर्ग दिया और दूसरे को ? दादू जी से भगवान ने कहा—"क्या दोगे ?" तो दादू जी ने कहा—"महाराज ! शरीर भी आपका, मन भी आपका, धन भी आपका, जीवन भी आपका ।" भगवान ने मुस्करा कर कहा,—"तुम ने सव दे दिया ! अरे ! देते समय भी तो अपने लिये कुछ वचाना चाहिए । तुम तो देते चले जा रहे हो ।" तो तुरन्त दादू जी ने मुस्कराकर कहा,—"महाराज ! सव तो मैंने दे दिया, पर एक वस्तु को अपने लिये वचा लिया ।" उन्होंने कहा—

तन भी तेरा, मन भी तेरा, तेरा पिण्ड परान।
सब कुछ तेरा, तू है मेरा, यह दादू का ग्यान॥

वोले—"महाराज ! सब कुछ आपका है पर आप स्वयं मेरे है।" तो वलि ने भगवान को ही माग लिया। वोला—"महाराज ! आपका नित्य दर्शन होता रहे।" वलि से भगवान ने मुस्करा करके कहा—"पाताल में चलो !" वलि वड़ा प्रसन्न हुआ, वोला—"महाराज ! चाहे आकाश मे भेजिए, चाहे पाताल मे भेजिए, पर आप सामने जरूर रहिए।" यह वड़ी पते की बात है। मै जहां रहूं, हमें वही पर ईश्वर दिखायी देता रहे। हम ऊपर है या नीचे इसका रञ्चमात्र भी भय वलि के अन्तःकरण में नही है। इस तरह से भक्ति योग का एक दिव्य रूप वलि के प्रसङ्ग में सामने आता है।

तो गंगा का जन्म उस समय हुआ था जवकि भगवान ने सारे ब्रह्माण्ड को दो पग मे नाप लिया था। और यहा पर जव केवट भगवान श्रीराम से यह कहने लगा कि अगर आपको पार जाना है तो चरण धुलाना पड़ेगा। और इतना ही नही, चरण धुलाना है तो आप को कहना पड़ेगा, तो गंगा ने सोचा, अरे ! कितना अभागा है, लगता है इसको पता नही की भगवान अपने को कितना बड़ा बना सकते है ? अरे ! अभी अपने को विराट वनावेगे, और अपना एक चरण उस पार रख करके चले जावेगे, और यह देखता रह जायेगा। पाये हुये अवसर को इसने खो दिया। लेकिन, गंगा को ही निराशा हुयी, केवट को निराशा नही हुयी। यह विचित्र वात है। गंगा को आश्चर्य हुआ। जव भगवान राघवेन्द्र यह कहने लगे :—

कृपा सिंधु बोले मुसुकाई।
सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारु।
होत विलंबु उतारहि पारु॥

वड़ी मीठी चुटकी ली गोस्वामी जी ने ! पहले गंगा को केवट की बुद्धि पर तरस आ रहा था, पर अव गंगा को यह सन्देह हो गया,

कि ये भगवान ही है ? कहीं और कोई राजकुमार तो नही आ गया ? क्योंकि, अगर भगवान होते तो क्या इस तरह से झुकते जाते, केवट की वात मानते जाते ? अरे ! तव तो अपना विराट रूप जैसे वलि की यज्ञशाला में दिखाया था, वनाते ? क्योकि, गंगा का जन्म ही विराट के नख को धोने से हुआ है। तो, आज भी विराट रूप का ही दर्शन होता ? इसलिये गोस्वामी जी की पंक्ति आप ध्यान से पढेगे तो उसमें मिलेगा :—

पद नख निरखि देव सरि हरषी।
सुनि प्रभु वचन मोहँ मति करषी ॥

"गंगा की बुद्धि जो है वह मोह के द्वारा आकृष्ट कर ली गयी।" गगा जी ने आश्चर्य से भगवान की ओर देखा ? मानो मनोमय रूप मे गंगा जी ने भगवान से पूछा कि, "महाराज ! वड़ी अद्भुत वात है, लगता तो यही है कि आप हमारे प्रभु ही हैं, लेकिन आप आज मेरी छोटी सी धारा को नाप नहीं पाये ? ब्रह्माण्ड को नापने वाले में इतनी कमी कैसे आ गयी ? भगवान ने मुस्करा करके कहा—"गंगा ब्रह्माण्ड को नापना तो मेरे वश में है, पर प्रेमी के प्रेम को नापना मेरे वश में नहीं है। यह केवट अहंकारी तो है नही, यह तो वस्तुतः प्रेमी है। मै स्वीकार कर लेता हूं कि यहां पर मेरी सामर्थ्य प्रेमी के प्रेम की सीमा को पार करने की नही है।"—भरत जी के प्रसङ्ग में यह पक्ति आती है, दावा किया गया कि :—

"तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की"

ससार मे विषयो की नदी को, संसार समुद्र को पार करना सरल है, पर गोस्वामी जी कहते हैं कि यह प्रेम की नदी को पार करना किसी के लिये भी सम्भव नही है। भगवान श्री राघवेन्द्र ने कहा—"गंगा ! ससार के किसी व्यक्ति की तो वात ही क्या है, मेरे लिये भी यह सम्भव नही है कि मै नाप पाऊँ।" तो, केवट के प्रति भगवान श्रीराम की जो दृष्टि है और केवट की जो भावना है, उस पर आप विचार करे।

गोस्वामी जी ने एक वड़े महत्व का सूत्र दिया। केवट भगवान श्री रामचन्द्र को भली प्रकार से पहिचान चुका है। उसके अन्तर्मन में दो इच्छा हैं और वे दोनों इच्छायें इतनी सुन्दर है कि उन अन्तरङ्ग इच्छाओ को दृष्टिगत रखकर विचार करें तो केवट का वड़ा अद्‌भुत रूप सामने आता है। क्या ? तो आप देखिए, ज्ञान और भक्ति की व्याख्या अनेक रूपों में की गयी। पर एक रूप में उसे हम यों कह सकते है कि, जीव को, ब्रह्म के समान वना देना, यह ज्ञान है और ब्रह्म को, जीव को समान वना देना, यह भक्ति है। इसका अर्थ यह हुआ कि जीव, ब्रह्म वन जाय या फिर ब्रह्म, हम लोगों की तरह वन जाय तो ही वरावरी ठीक रहेगी। जब उपनिषदों ने यह कहा कि ब्रह्म और जीव सखा है तो ज्ञानियों ने कहा कि, "सखापन तो तव सिद्ध होगा, जव हममें और आप मे रञ्चमात्र भी दूरी न हो !" तो इसलिये भगवान ने भी निमन्त्रण दिया, "मुझसे अपने एकत्व को पहिचान जाओ—सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा"—के रूप में ज्ञान में स्थित हो जाओ, सचमुच, हममें तुममें कोई भेद नहीं रह जायेगा। सचमुच हम और तुम एक हो जायेंगे। पर भक्तो ने बड़ा बढ़िया उपाय निकाला। भक्तों ने कहा—"महाराज ! हम लोगों के लिये, आपके समान वनना वड़ा कठिन है। इसलिये आप ही जरा हमारी तरह वन जाइये ! संसार में जरा आप भी आइये ! आप अपने धाम मे, जव देखिए, तव निमन्त्रण देते रहते है, मेरे धाम आओ, मेरे धाम आओ। तो, अगर आप मित्र हैं तो मित्र को मित्र के घर पर भी तो आना चाहिए ! एक मित्र दूसरे मित्र को बुलावे और स्वयं न आवे तो मित्रता वरावरी की नहीं रह गयी। आप निमन्त्रण दे, और जीव जाय और आप न आये, तो इसका अभिप्राय है कि भले ही आप मित्र कह करके पुकारते हो पर आप वड़े है और बेचारा जीव छोटा है। नही, नहीं, अव उलट गया क्रम। तो ज्ञान का अर्थ है भगवान के लोक में चले जाना, और भक्ति का तात्पर्य है, भगवान को मृत्यलोक में बुला लेना। इसलिये अगर आप ध्यान से देखेगे तो पूरे प्रसङ्ग में भक्ति के रस की, प्रेम के रस की, अनोखी प्रक्रिया है। इस प्रेम के द्वारा ईश्वर अपनी सामर्थ्य को भुला करके जीव की इच्छा के अनु-

कूल, जीव का धर्म स्वीकार कर लेता है। यह सर्वत्र आपको रामायण मे मिलेगा। यहाँ पर भी वही संकेत है।

जव भगवान श्रीराम गंगा के किनारे आकर के खड़े हुये और केवट से उन्होने कहा कि, मुझे पार लगा दो! तो केवट ने कहा—"अव बहुत वढिया वात हो गयी।" (वोला) आज आप ब्रह्म की भाषा तो वोल नही रहे है! आज तो आप जीव की भापा वोल रहे है। जीव वेचारा जीवन भर यही प्रार्थना करता रहता है कि भगवान आप किसी तरह संसार सागर से पार उतार दीजिए! पर अव ईश्वर जो भाषा वोल रहा है वह किसकी भाषा है? भक्ति ने ईश्वर को इतना वदल दिया है कि यही नही सर्वत्र, आदि से लेकर के अन्त तक, यह परिवर्तन दिखायी देता है। गोस्वामी जी ने लिखा कि भगवान श्रीराम जव नन्हे से थे तो एक दिन कौशल्या अम्वा पूजा मे कुछ भूल गयी। दूध पिलाने का ध्यान नही रहा। तो उस समय भगवान राम की आंखो से आसू झरने लगे, रोने लगे। और मा जव आयी तो मां की ओर प्रभु ने वड़े रूखे भाव से देखा .—

"चितइ मातु तन लागी भूखा।"

तो यह जो चित्र है, वह ब्रह्म का है या जीव का है? जो भूख के मारे, आसू वहाने लगे, रोने लगे, यह तो ब्रह्म का लक्षण नहीं है! सच्चिदानन्द का लक्षण नही है! ऐसा लक्षण तो जीव में दिखायी देता है। तो जिस समय भगवान दूध के लिये रोने लगे, तुलसीदास ने धीरे से भगवान के कान में कह दिया कि, "महाराज! अव आप को भी जीव की दशा का अनुभव हो गया? इसलिए, अगर जीव भी आपकी कृपा के दूध के लिये रोने लगे, या कभी आपको भला वुरा कह दे, तो वुरा न मानिएगा! वो तो आप प्रत्यक्ष ही देख रहे है। आपको भी इसकी अनुभूति हो रही है।" तो वस्तुत. अवतार का अभिप्राय, ब्रह्म के मनुष्य वनने का अभिप्राय, उसके मृत्यलोक में आने का अभिप्राय यह हुआ कि, वस्तुतः ब्रह्म ने जीव जैसा लक्षण ही अपने जीवन में स्वीकार कर लिया।

गोस्वामी जी ने लिखा—भगवान श्रीराम विलाप करते हुए जनकनन्दिनी को खोज रहे हैं, और जनकनन्दिनी को खोजते हुये सामने गीधराज पड़े हुये भगवान को दिखाई देते है। गीधराज का पंख कटा हुआ है। भगवान श्री राघवेन्द्र ने, तुरन्त गीधराज को गोद में उठा लिया ! आँखो में आसू आ गये ! प्रभु रोने लगे ! गोस्वामी जी ने गीतावली रामायण और रामचरितमानस दोनों में यह, कहा :—

"जल भरि नयन कहत रघुराई"

भगवान राम की आंखों में आसू है, और वे रोते हुये गीधराज को देख रहे है, पर विचित्र परिवर्तन हो गया। गीध की दशा क्या है ? भगवान श्रीराम नें गीधराज से प्रस्ताव किया :—

"राम कहा तनु राखहु ताता

भगवान राम ने कहा—"गीधराज जी ! आप मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिए ! तो अगला वाक्य बड़ा सुन्दर है। जव भगवान ने कहा कि, "आप शरीर की रक्षा कीजिए !" तो इसका गीधराज पर क्या प्रभाव पड़ा ? बोले—"राम कहा तन राखहु ताता"—तो ! "मुख मुसुकाइ" गीधराज हंसने लगे ! वड़ा अनोखा दृश्य है ! जब ब्रह्म रोने लगे और जीव हँसने लगे ! होना तो यह चाहिए था कि वेचारे गीधराज का पंख कटा हुआ था, चोट लगी हुयी थी, वे रोते। और सच्चिदानन्द ब्रह्म जो है वे आनन्द मे मुस्कराते हैं ? लेकिन, गोस्वामी जी ने कहा—"न भाई ! आज तो सचमुच परिवर्तन हो गया।" और वह परिवर्तन यही है कि, गीध के होठों पर हँसी है और ब्रह्म के आँखो मे आसू है। आज भगवान राम, गीध को मना रहे है। और इस मनाने मे गीधराज भगवान राम से कहते है—"मुख मुसुकाइ कहीं तेहि वाता।" महाराज ! आप मेरी हानि चाहते है कि लाभ चाहते है ?" क्यों ? वोले, महाराज ! आप शरीर रखने के लिए कह रहे है तो शरीर रहेगा तो यह बूढ़े गीध का ही तो शरीर रहेगा ? और मरूँगा तो वताइये क्या होगा ?—आगे

चलकरके बड़ा सुन्दर सङ्केत आता है न ?—गीधराज ने जब शरीर का परित्याग किया तो **"गीध देह तजि धरि हरि रूपा"** बस, वही सङ्केत है। भगवान तो उन्हे पिता के रूप में स्वीकार कर रहे है और गीधराज जी तुरन्त भगवान बन गये ! हरि बन गये !

गीध देह तजि धरि हरि रूपा।
भूषन बहु पट पीत अनूपा॥

जान बूझ करके भगवान ने उनको विष्णु का रूप दिया। इसके पीछे एक रहस्य था कि, गीधराज जी ने उत्साह में रावण को चुनौती दे दिया था।—

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा।
करिहऊं जातुधान कर नासा॥

"सीते पुत्रि ! तुम चिन्ता मत करो, मैं जातुधान का नाश कर दूंगा।" पर नाश नही कर पाये। नाश करने के स्थान पर रावण ने ही गीधराज का पंख काट दिया। तो जब भगवान राम से गीधराज का मिलन हुआ और भगवान राम को पता चला कि, गीधराज के मुंह से तो यह वाक्य निकला था कि मैं रावण को मार दूंगा ? तो उनको लगा कि भक्त की बात तो झूंठी हुयी जा रही है, इसलिये तुरन्त उनको विष्णु बना दिया। बोले, उन्ही के रूप में मै भी मारूँगा तो, आपका ही अवतार माना जायेगा। इसलिए विष्णु आप है और राम मै हूं। मैं आपका ही द्वितीय रूप हूं, और यदि मेरे द्वारा रावण की मृत्यु होती है तो आपका संकल्प भले ही तत्काल पूरा न हुआ हो, पर भविष्य मे आपका संकल्प निश्चित रूप से साकार होने जा रहा है।

तो, यह रामचरितमानस मे विलक्षण प्रक्रिया है कि वस्तुतः हम लोगों को तो केवट को धन्यवाद देना चाहिए, क्योंकि केवट ने तो भगवान के रहस्य को प्रगट कर दिया ! केवट ने, जब दावा किया कि मै आपको जानता हूं, और जब केवट ने इतनी बातों को भगवान राम के सामने शर्त के रूप में रख दिया, तो केवट का अभिप्राय था

प्रभु ! आपकी कृपा का, आपकी करुणा का, आपकी महानता का, सच्चा रूप जितना मेरे सामने प्रगट होना सार्थक होगा, उतना और किसी के सामने नहीं। क्योंकि प्रभु ! आप संसार में, अगणित जीवों पर कृपा किया करते हैं। बड़े साधकों पर, तपस्वियों पर, योगियों पर, लेकिन जब किसी बड़े महापुरुष पर आपकी कृपा होती है, किसी महापुरुष को आपकी प्राप्ति होती है, तो लोग यह कहते हैं कि भई ! इन्होंने इतनी तपस्या की, इतनी साधना की, तव इनको भगवान मिले। लेकिन प्रभु ! जब व्यक्ति यह समझता है कि मेरे सत्कर्म, पुण्य और मेरी साधना से भगवान मिले, तो साधना और पुण्य का महत्व तो वढ़ता है, पर आपकी कृपा का जो रहस्य है, उसे व्यक्ति भूल जाता है। आप अगर गुरु वशिष्ठ पर कृपा करें तो कोई नहीं मानेगा कि आप कृपा कर रहे है। क्योकि, उन्होंने बड़ी साधना की। महाराज दशरथ और कौशल्या पर आप कृपा करे तो कोई नही मानेगा कि, आपने कृपा की। क्योंकि, उन्होंने बड़ी तपस्या की। तो यही लगेगा कि आप तपस्या और नाना प्रकार के साधनो पर कृपा करते हैं। लेकिन, प्रभु ! आज जब आपकी कृपा मुझ पर बरसेगी तो आपकी कृपा की समग्रता प्रगट होगी। केवट ने एक बड़ी मीठी बात कही न ? बड़े-बड़े ऋषि मुनि तो कहते है कि हम सब कुछ छोड़ कर के आपको चाहते है। और केवट कहता है महाराज ! मै आपको पार उतारूँ या अपने परिवार को भूँखा मारूँ ? ऐसी भाषा बोलने वाला रामायण में और कोई नही है। वह तो केवट ही है जो भगवान के सामने कहता है कि मेरा परिवार भूखों मर जायेगा, इसलिये पार नहीं उतारूँगा। केवट का हृदय वस्तुतः बहुत अधिक गहरा है। उस की भाषा के अटपटेपन में उसका अभिप्राय क्या है ? कई वार लोग मुझसे पूछा करते हैं—"केवट पूर्वजन्म में क्या था, बताइये ?" मै कहता हूं—"मुझे नही मालूम।" वड़े निराश होते है, इन्हें नही मालूम ? लेकिन, मै सच बताता हूं कि न तो मुझे मालूम है और न मै चाहता हूं जानना। आप लोगों में किसी को मालूम हो तो बताइयेगा गा भी नहीं। गोस्वामी जी ने भी तो नहीं बताया। क्यों नही बताया ? लोग पूर्वजन्म इसलिये ढूंढ़ते हैं कि सोचते है कि इस जन्म में अगर साधना न निकले तो पूर्वजन्म में कोई साधना ढूंढ़ लो, जिस

से भगवान की कृपा का कारण समझ में आ जाय। पर आप सोचिये अगर आप उसमें पूर्वजन्म की विशेषता ढूँढ लेंगे तो उस विशेषता के ढूँढ लेने से भगवान की कृपा का जो दिव्य गुण है, वह तो खो जायेगा। भगवान की कृपालुता का सच्चा रूपा कब प्रगट होता है ? जो यह शब्द कहा गया :—

"अस प्रभु दीन बन्धु हरि कारण रहित दयालु"

तो यह 'कारण रहित दयालु' शब्द का प्रयोग अगर कहीं सच्चे अर्थों में सार्थक हो सकता है तो केवट के प्रसङ्ग मे हो सकता है। भगवान खड़े हुये हैं और केवट बैठा हुआ है।

रामायण मे यह सर्वत्र आता है कि, जब कोई मुनि सुनते है कि भगवान आये हुये है तो मुनि भगवान का दर्शन करने के लिये दौड पड़ते है। पर यहाँ भगवान खडे है और केवट बैठे-बैठे भगवान से बातचीत कर रहा है। केवट की इस अटपटी क्रिया के पीछे रहस्य था कि महाराज ! कोई किसी को निमन्त्रण देके बुलाये तो बडा ध्यान रखना पड़ता है, पर जब कोई जबरदस्ती आ जाय तो फिर चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। ये बेचारे ऋषि-मुनि या बड़े से बड़े लोग जो है, ये सबके सब आपको बड़ा निमन्त्रण देते है, और निमन्त्रण देते है तो आपका ध्यान रखना भी बड़ा स्वाभाविक है। लेकिन प्रभु ! मैं तो परिवार में डूबा हुआ, अपने परिवार का पालन करने वाला और मीठा व्यङ्ग भी किया। बोला—प्रभु ! मेरे सामने तो यही सबसे बडी समस्या है। और ऐसी परिस्थिति में आप गंगा के किनारे बिना निमन्त्रण के आकर के खडे हो गये तो मै चाहता हूं कि, जिस स्वभाव को मैने जान लिया, संसार वाले भी जान ले कि, आप कितने उदार है, आप कितने दयालु है, आपके हृदय में कितनी करुणा है, कितनी कृपा है। इसलिये वर्णन आता है कि, अगर यह केवट प्रसङ्ग न हुआ होता तो भगवान राम जब वन मे गये तो भगवान राम से मिलने के लिए पहले स्वर्ग के देवता आये। गोस्वामी जी बड़ी मनोवैज्ञानिक बात कहते हैं। जब देवता भगवान राम से मिलने आये तो :—

"राम प्रनाम कीन्ह सब काहू"—

भगवान राम ने प्रत्येक देवता को प्रणाम किया। देवता वड़े प्रसन्न हुये। भगवान राम ने पूछा—"कैसे कष्ट किया?" तो देवताओ ने अपने स्वभाव का परिचय दे दिया :—

"करि बिनती दुःख दुसह सुनाए"

स्वर्ग में कितना आजकल दुःख है यह भगवान को सुना दिया। प्रभु मुस्कुराये! प्रभु तो आये हुये है राज्य छोड करके वन में, तो यह पूछने के स्थान पर कि आप की क्या सेवा करे? देवता कहते हैं कि,—"महाराज! ये, ये संकट है और इन संकटों को आपको दूर करना है।" पर भगवान श्री राघवेन्द्र उदार है। बोले—"अच्छा, अच्छा, हम आपका संकट दूर करने की चेष्टा करेंगे।" उसके वाद गोस्वामी जी लिखते है, ऋषि-मुनि आये तो :—

आवत देखि सकल मुनि वृन्दा।
कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥

भगवान राम ने मुनियो को तो देखकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया मुनियों ने देखा, तो मुनियो को क्या लगा? जैसे आपने वड़े परिश्रम से कोई वृक्ष लगाया हो और समय पर वह वृक्ष फल देने लगे तो व्यक्ति को वड़े उत्साह और आनन्द की अनुभूति होती है। इसी प्रकार से मुनियो ने इतने वर्षो से साधना का जो वृक्ष लगाया था, उसका परम फल है ईश्वर का साक्षात्कार। जव श्रीराम को सामने देखा तो गोस्वामी जी ने शव्द ही यही दिया—ये जितने मुनि है उनको यही प्रतीत हुआ :—

आवत देखि सकल मुनि वृन्दा।
कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥
मुनि रघुबरहिं लाइ उर लेही।
सुफल होग हित आसिष देही॥
सिय सौमित्र राम छवि देखहिं।
साधन सकल सफल करि लेखहिं॥

उनको ऐसा लगा कि, हमने जितनी साधना की थी, उसका फल पा लिया। तो स्वर्ग के देवताओं को लगता है कि हम देवता है, हमने सत्कर्म किया है, इसलिये भगवान मिले। ऋषि-मुनियो को यह प्रतीत होता है कि हमने इतनी साधना की है, इसलिये भगवान मिले है। पर केवट प्रसङ्ग का प्रभाव तो बड़ी दूर तक फैल गया। गोस्वामीजी ने कहा—अब कौन आया ? सबसे अन्त में कौन आया ? बोले—

यह सुधि कोल किरातिन्ह पाई।
हरषे जनु नव निधि घर आई॥

अरे भाई ! खजाना पाने के लिये जाना पड़ता है, यहां खजाना स्वयं चल करके आ गया। केवट के प्रति भगवान राम की उदारता सुन चुके है और सुन करके ही यह साहस हुआ। अगर वे अपनी साधना, तपस्या, वर्ण, इस दृष्टि से विचार करके देखते, तो कभी भगवान राम के पास आने की कल्पना भी नही कर सकते थे। आगे चल करके एक बात उनके मन मे बद्धमूल हो गयी। जब यह प्रभु इतने उदार है कि, केवट की वाणी को सुन करके रूठ करके नही लौटे और जो केवट ने कहा, वही किया, तो हम लोग भी जो कहेगे ये जरूर करेगे। इसलिये, किसी ने गोस्वामी जी से पूछा—"महाराज देवताओं ने, ऋषियो मुनियो ने तो वृक्ष लगाये और वृक्ष का फल उन्हें मिला। किसी ने पुण्य का वृक्ष लगाया तो भगवान मिले। किसी ने साधन का वृक्ष लगाया तो साधन का फल मिला। पर यह बताइये कि जो कोल किरात थे उनको काहे का फल मिला ?" गोस्वामी जी ने बड़ा मीठा व्यङ्ग किया—बोले भाई ! अगर अपने लगाये हुये वृक्ष का फल मिले तो परिश्रम का फल है। और यदि वृक्ष लगाये कोई और, और फल हमें मिल जाय, तो फिर इससे बढ़ करके तृप्ति की क्या बात है ?

गोस्वामी जी कहते है कि, इन्होने एक नया काम किया। इन्होने पत्तो के दोने बनाए, पत्ते के दोने बना करके कन्द-मूल-फल भर दिया। किसी ने कहा—"ये कहा जा रहे है ?" तो गोस्वामी जी ने बड़ा मीठा शब्द कहा—बोले, "ये लूटने जा रहे है।" गोस्वामी जी

का अभिप्राय था कि भई ! इन लोगों ने कहा कि, हम तो साधक है नही, जो दाम देकर पा सकें। हम तो लूटकर ही पा सकते है। और शब्द गोस्वामी जी के क्या है ?—

कंद मूल फल भरि भरि दोना।
चले रंक जन लूटन सोना॥

और जा करके भगवान श्री राघवेन्द्र के पास :—

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे।
प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
राम सनेह मगन सब जाने।
कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥

कोल-किरातों से वे कन्द-मूल स्वीकार करते है। प्रभु को हँसी आ गयी। भई और लोग तो फल लेने आते है, ये वेचारे तो फल देने आये है। वात तो वडी उल्टी है। केवट का इतिहास दुहराया जा रहा है। मुझसे सव लोग कहते है पार उतार दो ! पर केवट ने मुझे पार उतार दिया। मुझे तो सव लोग कहते हैं, फल दीजिए ! पर ये लोग फल लेकर के मुझे देने आये है। और फिर भगवान राम को उन लोगों ने आश्वासन दिया। वोले—"आपने अच्छा किया किसी ऋषि-मुनि के आश्रम में नही ठहरे। यहाँ ठहर गये तो ठीक है। क्यों ? उन लोगों ने कहा, महाराज !

कीन्ह बासु भल ठाउँ विचारी।
इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
बन बीहड़ गिरि कंदर खोहा।
सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥

वोले—महाराज ! यहा का वन इतना वीहड़ है कि आप तो मार्ग भूल जायेगे। केवट भी भगवान से कहता है कि अगर आप नाव से न जाना चाहे, तो कमर तक जल है पार हो जाइए ! 'कवितावली'

रामायण मे वर्णन आता है—केवट ने प्रस्ताव किया कि अगर आप को लगता है कि मै चरण कैसे धुलाऊँ, कैसे कहूं ? तो—

"एहि घाट ते थोरिक दूरि अहै, कटि लौ जलु थाह देखाइहौं जू।"

मै वह जगह आपको दिखला दूँ जहां कमर तक जल है, चलिए ! तो जब भगवान से केवट ने कहा कि कमर तक जल है तो भगवान ने मुस्कुरा करके पूछा कि—"तुम्हारे कमर तक जल है कि मेरे कमर तक जल है ?" अरे भई ! तुम्हारी कमर तक जो जल है वह मेरे लिये डूबने वाला जल है। इसका अभिप्राय यह है कि भक्ति के प्रेम रस को मै ऐसे बिना भक्ति की अनुमति के कैसे पार करूँगा ? तो ये कोल-किरात लोग भी कह देते है महाराज ! आपने बडा अच्छा किया ! आप जगल मे मार्ग भूल जाते ! अब हम लोग आ गये है तो आपके लिये बढ़िया बात हो गयी। अब आपको "सर निर्झर जल ठाउँ देखाउब"—और साथ-साथ भगवान से एक प्रस्ताव किया—"जहँ जहँ तुम्हहिं अहेर खेलाउब" महाराज ! कोई ऋषि-मुनि आपको शिकार खिलाने थोड़ी ले जा सकता था। शिकार खिलाने का काम तो हमी लोग कर सकते है।

गोस्वामी जी से किसी ने पूछा—कि, "जब केवट ने भगवान राम से कहा कि, मै आपके मर्म को अच्छी तरह से जानता हू, और इन लोगो ने भगवान राम से कहा कि मार्ग भूल जाएंगे, हम आपको मार्ग दिखायेगे, हम आपकी सेवा करेगे, वड़ा अच्छा हुआ आप यहा पर रह गये ! हम, आपको अहेर खिलायेगे तो भगवान राम को कैसा लगा ? यह उचित है क्या ? क्या भगवान को कोई मार्ग दिखायेगा ? भगवान को कोई अहेर खिलायेगा ? भगवान को कोई पार करेगा ?" तो गोस्वामी जी ने तुरन्त कहा—"अरे भाई ! अगर साधन सत्य है तो उसके स्थान पर यह भी सत्य है।" और दृष्टान्त उन्होंने वड़ा सुन्दर दिया ! आपके घर कोई विद्वान आ जाय आप वडा सम्मान करेगे, वडी पूजा करेगे। और ठीक भी है, विद्वान या श्रेष्ठ व्यक्ति को सम्मान देना स्वाभाविक है। लेकिन, आप यह सोचिए कि आपका

जो नन्हां बच्चा है उस नन्हें बच्चे की वाणी जब निकलती है तो उस में कौन सा भाषण होता है ? कौन सा तत्व ज्ञान होता है ? पर कोई आपके हृदय से पूछे, कि आप उत्कृष्ट से उत्कृष्ट भाषण सुन करके जितने प्रभावित होते है, आनन्दित होते है, अपने नन्हें से बच्चे की तोतली वाणी सुन करके क्या उससे हम प्रभावित होते हैं ? तो आप को लगेगा कि विचित्र बात है ! इसमें विचित्रता क्या है ? देखिये न ! बड़ी उलटी बात हो गयी। जितनी अयोग्यता बच्चे में है उतना ही वह प्यारा है। अगर समर्थ है तो खड़ा कर दीजिये, कि खड़े होकर चलो और अगर चलने योग्य न हो तो फिर उठा करके गोद में भी लीजिए ! कोई अगर दिन-रात सोया रहे तो लोग कहेंगे—'निकम्मा' है। पर बालक अगर सोया रहे तो व्यक्ति को लगता है बालक को और सोने दो ! इसलिए गोस्वामी जी ने तुरन्त कहा—

"बेद बचन मुनि मन अगम"—

—किरातों की वाणी सुन करके भगवान को आनन्द आया। केवट की भी वाणी सुन करके भगवान को आनन्द आया "सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।" 'विहँसे'—और, यहां पर भी आनन्द आया :—

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुनाऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥

"जैसे—पिता, बालक की वाणी सुनता है।" भगवान को लगा कि, अहा ! इतनी मीठी भाषा या तो केवट ने कही थी, या तो उन्ही के जाति बन्धुओं ने कहा ! ऋषि-मुनि, देवता तो वही पुरानी स्तुति दुहराते रहते है। कोई नयी बात तो कहते ही नही है।

तो आप देखिए, सचमुच इनमें कैसा दैन्य मिटा, कैसा आत्म-विश्वास लौटा कि, जिस समय श्री भरत जी सेना के साथ आये। यद्यपि, श्री भरत जी के साथ पूरी सामग्री आयी हुयी थी पर कोल-किरातों ने आपस में सलाह की, कि हमारे प्रभु के यहाँ आकर कोई अपना फल खाये, कोई अपनी वस्तु खाये, तो यह तो गृहपति का

अपमान है। तो लेकर के कावर वे जव फल आदि देने के लिये चले तो अयोध्यावासी वडे उदार थे, वे लोग 'देहिं लोग वहु मोल न लेही'—दाम देने लगे। तव इन लोगो ने कहा—"हम दाम नही लेगे।" तो उन लोगो ने कहा —"विना दाम के हम वस्तु नही लेगे।" और आश्चर्य से नगरवासियो ने वनवासियो से पूछा कि, "भाई ! विना दाम के तो कोई वस्तु विकती नही। तुम लोग जो इतना फल लेकर के आये हो, दाम क्यो नही लेते हो ?" तो कोल-किरातों ने वड़ा सुन्दर उत्तर दिया। उन्होंने कहा—"भगवान ही जव विना दाम के हमें मिल गये तो हम फलो के दाम क्यो ले ? लगता है भगवान आपको दाम से मिले होंगे ? इसलिए आप दाम का सिद्धान्त नही भूल पा रहे है !" और कह दिया :—

"राम कृपालु निषाद नेवाजा।
पुरजन प्रजा चहिअ जस राजा॥"

कि हमारे प्रभु ऐसे 'कृपालु' है। और इसका अभिप्राय है कि, सच्ची वात तो यह है कि केवट अपनी अटपटी भाषा के द्वारा प्रभु के कृपा के तत्व को, स्वभाव के तत्व को प्रगट कर देता है, जिसको वड़े-वड़े ऋषि मुनि भी प्रगट करने मे समर्थ नही हुये। आज भक्त और भगवान की वात आज यही पर रोक रहे है। कल, इस पर फिर विचार करेगे। आज, वस इतना ही।

॥ वोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ॥

श्री रामः शरणं मम

५

आइए, गंगा के किनारे चले और वहाँ हठीले केवट और भगवान श्रीराम के बीच जो रसमय वार्तालाप चल रहा है, उसे हृदयङ्गम करने की चेष्टा करे। केवट ने प्रारम्भ में प्रभु से जैसा व्यवहार किया वह बड़ा ही विचित्र था। बड़ा ही अटपटा था। उसके अटपटेपन का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि भगवान श्री राघवेन्द्र को छोड़ करके जनकनंदिनी सीता और श्री लक्ष्मण भी केवट की इस वाणी में आनन्द लेने में समर्थ नही हैं। वैसे जब कोई हंसी की बात या आनन्द की बात हो तो सभी की मुखाकृति से आनन्द झलकने लगता है। इसी तरह से यदि केवट की बात सुन करके तीनो हंस पड़ते तो उससे तीनों के आनन्द की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती। लेकिन, केवट की वाणी का आनन्द एक मात्र भगवान श्रीराम लेते है। और जब उन्हे ऐसा प्रतीत होता है कि जनकनंदिनी सीता और लक्ष्मण तो इस प्रसङ्ग में बड़े गम्भीर हो गए है तो भगवान श्रीराम ने हँस करके उन दोनों की ओर देखा और मानों दोनो को आमंत्रित किया कि, जिस वाणी में मुझे इतना आनन्द आ रहा है, उसमें तुम लोग क्यों आनन्द नही ले पा रहे हो? यद्यपि, इस आनन्द न ले पाने के पीछे एक साङ्केतिक तात्पर्य है। जनकनंदिनी सीता और लक्ष्मण को प्रारम्भ में आनन्द इसलिए नही आया, क्योंकि श्री लक्ष्मण की भी यह धारणा है कि भगवान से निरन्तर डरते रहना चाहिए। और जनकनंदिनी सीता भी स्वयं इस भय की वृत्ति को महत्त्व देती हैं। इसका सङ्केत आपको

रामचरितमानस के भिन्न-भिन्न प्रसङ्गो में मिलेगा। भगवान श्री राघवेन्द्र वन-पथ मे चल रहे है। आगे-आगे भगवान श्रीराम है, पीछे लक्ष्मण है और दोनो के मध्य मे श्री सीता जी है। पर रामायण मे वर्णन आता है कि उस समय श्री सीता जी इतनी डरी हुई है कि उनका, एक भी पग विना भय के आगे नही उठता।

आगे रामु लखनु बने पाछे।
तापस वेष बिराजत काछे।
उभय बीच सिय सोहति कैसे॥
ब्रह्म जीव बिच माया जैसे।

\+ \+ \+

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता।
धरति चरन मग चलति सभीता॥

श्री जनकनंदिनी सीता के मन में एक ही भय है। जव श्रीराम आगे-आगे चलते है तो उनके चरण चिह्न धूल में वन जाते है। और जनकनंदिनी सीता पीछे चलती हुई डरती है कि कही ऐसा न हो कि भूल से मेरा चरण, धूल मे इस अङ्कित चरण-चिह्न पर पड़ जाय और मेरे चरण के कारण, प्रभु के जो पग चिह्न है, वे मिट जाये। प्रभु की जो भूमि मे अङ्कित रेखाये है, वे मिट न जाएं, इस भय से जनकनंदिनी सीता भयभीत है। तो, अपने आप मे यह वड़ी अद्भुत् और आश्चर्यजनक वात लगती है, क्योंकि जनकनंदिनी सीता और भगवान श्रीराम मे इतनी अभिन्नता है। प्रीति की दृष्टि से भी श्री सीता, भगवान श्रीराम की अतिशय प्रिया है और इतने वर्षो से निरंतर भगवान राम के समीप है। वैसे तात्त्विक दृष्टि से तो अनादिकाल से श्री सीता जी, भगवान श्रीराम के साथ है, यदि और अन्तरङ्ग में पैठ करके देखे तो श्री सीता जी और श्रीराम तत्त्वतः एक ही है। लेकिन, केवल अगर व्यवहार के क्षेत्र मे भी देखे तो विवाह के पश्चात् न जाने कितने वर्ष व्यतीत हो गए है। पर इतने वर्षो से साथ रहते हुए भी जनकनदिनी सीता, जव भी चलती है तो प्रत्येक पग सावधान

रह करके ही उठाती है। गोस्वामी जी कहते है कि श्री सीता जी सभीत है, डरी हुई है। तो, जनकनन्दिनी सीता तात्त्विक दृष्टि से और भावनात्मक दृष्टि से भय की वृत्ति को स्वीकार करती है।

श्री लक्ष्मण जी के चरित्र में तो इस भय को अत्यधिक महत्त्व दिया गया। रामचरितमानस में आपको लक्ष्मण जैसा कोई निर्भीक पात्र नही मिलेगा। लेकिन, श्रीराम से इतना अधिक डरने वाला भी शायद कोई नहीं मिलेगा, जितने श्री लक्ष्मण है। यदि आप जनकपुर के प्रसङ्ग पर दृष्टि डालेगे तो आपको दिखाई देगा कि, लक्ष्मण जी डरे हुए है। वन-यात्रा में भी भगवान श्रीराम के पीछ श्री सीता जी तो डर करके पग उठाती ही हैं, पर लक्ष्मण जी तो प्रत्येक पग उठाने मे और भी अधिक सावधान है। उनके मन मे और भी अधिक भय है। और उन्हें यह चिन्ता है कि मेरे आगे-आगे ये दो-दो चरण चिह्न वने हुए है (प्रभु के और जनकनंदिनी सीता के) तो मेरे द्वारा कही ये रेखाये मिट न जाये। जनकपुर के प्रसङ्ग मे श्री लक्ष्मण जी के मन में कितना भय है, यह कई प्रसङ्गों मे दिखाई देता है। लक्ष्मण जी के मन में जनकपुर देखने की इच्छा है लेकिन बोल नही पा रहे है। गोस्वामी जी से पूछा गया—क्यो नही बोल पा रहे हैं? तो गोस्वामी जी एक ही कारण लिखते है :—

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी।
जाइ जनकपुर आइअ देखी॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं।
प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥

प्रभु के भय के मारे नहीं बोल पा रहे हैं। इतना निर्भीक वक्ता कि जिसके भाषण से पृथ्वी काप जाती हो वह, श्रीराम से एक वाक्य कहने मे डरे कि मै जनकपुर देखना चाहता हूं? बड़ी विचित्र बात है! और इतना ही नही, यह भय सर्वत्र दिखाई देगा। रात्रि के समय प्रभु शयन कर रहे है। पहले श्री विश्वामित्र विश्राम करने के लिए लेटे और श्रीराम और श्री लक्ष्मण दोनों ने उनके चरणों की सेवा

की। और उसके पश्चात् भगवान श्री राम जब विश्राम के लिए पलंग पर लेटे तो श्री लक्ष्मण जी, श्री राम के चरणों को गोद मे ले करके दबा रहे है। लेकिन, दबाते समय उनकी मनःस्थिति क्या है? वही शब्द आपको मिलेगा—

चापत चरनु लखनु उर लाएँ।
सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥

प्रेम तो बहुत है, पर डर भी उतना ही है। एक क्षण के लिए भी लक्ष्मण जी भगवान श्री राम का चरण दबाने मे भय से मुक्त नही है। तो जनकपुर देखना है तो कहने मे भय लगता है। यदि चरण दबाते है तो चरण सेवा करते हुए भी भय की वृत्ति विद्यमान है। और जब धनुषयज्ञ के प्रसङ्ग में महाराज जनक की वाणी को सुनकर के उनको क्रोध आया और बाद मे वे बोले भी, पर बोलने मे पूर्व गोस्वामी जी ने लिखा कि जिस समय लक्ष्मण जी ने जनक जी की वाणी को सुना और उत्तर भी देना चाहते है, पर एक ही समस्या है। क्या? बोले—"**कहि न सकत रघुबीर डर**" प्रभु के सामने हम कैसे बोले? इस भय के मारे लक्ष्मण जी बोलते नही है। और लक्ष्मण जी की निर्भयता को तो परशुराम ने देखा—आगे चल करके परशुराम आए। यह तो विचित्र सी बात है। साधारणतया जिन श्रीराम से नही डरना चाहिए, उनसे लक्ष्मण जी डरे हुए दिखाई देते है और, जिन परशुराम को देख करके सब डर के मारे कापते रहते है, जिनको देख करके—

"पितु समेत कहि कहि निज नामा।
लगे करन सब दंड प्रनामा॥"

ऐसी स्थिति हो जाती है, लक्ष्मण जी उनके सामने इतनी निर्भयता से बोले कि गोस्वामी जी ने लिखा कि परशुराम जी तो लक्ष्मण जी के वार्तालाप से ही आधे हार गए—

भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी।
रिस तन जरइ होइ बल हानी॥

जब वे एक नन्हे से बालक के रूप मे लक्ष्मण की निर्भयता को देखते है तो वे ऊपर से चाहे जितने रुष्ट हो रहे हों, अन्दर में कहीं न कही उनके मन में लक्ष्मण का आतङ्क भरता जा रहा है। इस बालक की इस निर्भयता का रहस्य क्या है? उन्होंने श्री राम को उलाहना दिया। और उलाहना देते हुए कहा कि राम, तुम तो बड़े सज्जन हो, लेकिन तुम स्वयं कितनें भी सज्जन क्यों न हो, पर तुम दूसरो को अपने वश में रखने में समर्थ नहीं हो। तो सङ्केत उनका लक्ष्मण की ओर था। तुम इतने सरल हो तो तुम्हारा छोटा भाई जो इतने दिनों से तुम्हारे पास है, उसे भी तो वैसा ही होना चाहिए! लेकिन तुम स्वयं तो सज्जन हो पर दूसरों को सज्जन बनाने की शक्ति तुममे नही है। परशुराम जी भगवान श्री राम पर आक्षेप करते है—

सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही।
नीचु मीचु सम देखि न मोही॥

भगवान श्री राघवेन्द्र मुस्कुरा करके इस वाक्य को सुनते है। एक ही क्षण मे लक्ष्मण जी के दो चित्र दिखाई देंगे आपको। क्या? परशुराम जी ने जिस समय यह वाक्य कहा, उसी समय दो प्रतिक्रिया हुईं। गोस्वामीजी कहते है कि पहली प्रतिक्रिया हुई तो लक्ष्मण जी की यह हुई, कि ज्यो ही परशुराम जी ने यह कहा कि तुम्हारा भाई तो स्वभाव से बड़ा टेढ़ा है, तुम्हारा अनुकरण नही करता, तो तुरन्त व्यङ्ग की भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होने कहा—

"मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया।"

"महाराज! मै तो आपका अनुयायी हू।" औरइसका अभिप्राय है कि अगर सरलता आपको इतनी प्रिय है तो आप भी सरल बन जायें, मै भी बन जाऊं? और अगर आपका टेढ़ापन ठीक है, तो मै भी टेढ़ा हू। आपको तो प्रसन्न होना चाहिए कि आपका ठीक एक अनुगामी है। लेकिन दूसरी ओर गोस्वामी जी ने लिखा कि लक्ष्मण जी कितने अधिक भयभीत रहते है प्रभु से! परशुराम जी का श्री राम से सङ्केत यह था कि कम से कम तुम अपने भाई को रोको तो, जो

ऐसा व्यवहार कर रहा है। तो भगवान श्री राघवेन्द्र चाहते तो वाणी से भी कह सकते थे, "लक्ष्मण ऐसा मत बोलो।" लेकिन, भगवान श्री राघवेन्द्र ने वाणी का प्रयोग नही किया। तव काहे का प्रयोग किया? गोस्वामी जी ने कहा—"नयन तरेरे राम" भगवान श्री राम की आँखो की भौहे जरा टेढ़ी हो गईं और टेढ़ी भौहो से भगवान श्री राघवेन्द्र ने, लक्ष्मण जी की ओर देखा। कितना प्रभाव पड़ा? जिसके भाषण से ब्रह्माण्ड काप उठा था, जिसके भाषण से परशुराम जैसा महानतम विजेता भी एक वार आतङ्कित हो उठा, उन लक्ष्मण जी की स्थिति यह हो जाती है कि--

"गुरु समीप गवने सकुचि परिहरि बानी वाम"

बिल्कुल चुप हो गए और गुरु जी के पास जाकर खड़े हो गए। भगवान श्री राम का व्यवहार और श्री लक्ष्मण की जो प्रतिक्रिया थी वह परशुराम के लिये सबसे बड़ा उत्तर था। परशुराम का यही तो आक्षेप था, कि तुम्हारा छोटा भाई तुम्हारे वश मे नही है! भगवान राम ने दिखा दिया कि महाराज! यह इतना सङ्केत समझने वाला है कि शब्द नही, यह तो आँखो से ही समझ लेता है। और अगर आप फरसे से नही समझा पा रहे है तो कोई न कोई कारण होगा। यह तो इतना सजग है कि मेरी भृकुटी के टेढ़े होने से सजग हो गया, यह लक्ष्मण जी के चरित्र में भय की वृत्ति है। तो जनकनंदिनी सीता और लक्ष्मण जी के चरित्र मे भय की वृत्ति को महत्त्व दिया गया।

अब, अगर उपासना की दृष्टि से विचार करके देखे तो एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि भय की वृत्ति श्रेष्ठ है या अभय की वृत्ति श्रेष्ठ है? गीता मे अभय की वृत्ति की ही प्रशंसा की गई—"अभय सत्त्व संसुद्धि" कह करके अभय की महिमा गाई गई। और रामचरितमानस मे भी निर्भयता का महत्त्व है। लेकिन, इस अभय और भय की रामचरितमानस में समग्र व्याख्या विस्तृत रूप से की गई और वह व्याख्या यह है कि, श्री सीता जी और लक्ष्मण के जीवन मे जो भय है, उस भय का रहस्य क्या है? गोस्वामी जी भी इसी के पक्षधर है। ये तो हम जिस पात्र की चर्चा कर रहे है वही पात्र केवल

ऐसा निकला जो, भय से मुक्त दखिाई दे रहा है। नही तो, गोस्वामी जी भी जब विनय पत्रिका में प्रभु से माँगते है तो कहते है कि तीन भावनाये मेरे मन में उत्पन्न कीजिए और उन तीनों को गिनाते हुए कहते है कि,—"सुत की प्रीति" एक पुत्र को पिता का जैसा प्रेम प्राप्त होता है वैसा प्रेम मुझको दीजिए ! और, "प्रतीति मीत की" मित्र का जैसा विश्वास दीजिए। और जब भगवान ने दोनों दे दिया तो गोस्वामी जी ने कहा—"प्रभु ! अब तीसरी वस्तु मुझे और दीजिए। और वह क्या दीजिए ? उन्होने कहा—अब कृपा करके, "नृप ज्यों डर डरिये"—राजा से जैसा प्रजा को डर लगता है, उसी प्रकार से निरंतर मुझको आपसे डर लगा रहे। बड़ी विचित्र बात है। यह प्रीति और प्रतीति के साथ डर क्यों? डर तो प्रीति और प्रतीति की विरोधी भावना जान पड़ती है। पर उसको यों दृष्टान्त के रूप में कहें कि—जैसे एक पौधा लगाने के पश्चात् उसकी सुरक्षा के लिए चारों ओर कांटे की बाढ़ लगा दी जाती है कि जिससे कोई पशु जो है उस पौधे को नष्ट न कर दे, और उस बाढ़ के द्वारा वह वृक्ष सुरक्षित रहता है, इसी प्रकार से गोस्वामी जी का अभिप्राय यह है कि, संसार की ओर से तो व्यक्ति को निर्भय हो जाना चाहिए। संसार में से तो भय छूटे, और व्यक्ति भय से मुक्त हो जाय तो बढ़िया बात है लेकिन, ससार का भय मिटने के साथ-साथ कही भगवान का भी भय, व्यक्ति के जीवन से मिट गया तो उसका परिणाम क्या होगा ? गोस्वामी जी कहते है कि—"प्रभु ! मुझे यह डर लग रहा है कि यदि कही आपने प्रीति और विश्वास दे दिया और आपकी प्रीति और विश्वास को पा करके मेरे जीवन में निश्चिन्तता आ गई, मैं निर्भय हो गया, और कही निर्भय हो करके मनमाना आचरण करने लगा, तब तो महाराज ! प्रीति और प्रतीति मे बाधा पड़ेगी, इसलिए आप कृपा करके मेरे जीवन मे भय भी बना रहने दे।" प्रीति और प्रतीति के साथ जब हमारे जीवन मे भय भी बना रहेगा, तो हमारी प्रीति भी सुरक्षित रहेगी। इसका अभिप्राय है कि जो ईश्वर से डरता है, उसे संसार में किसी से डरने की आवश्यकता नही रह जाती। परशुराम से लक्ष्मण नही डरते है। इसका अभिप्राय यह है कि श्री राम को जान लेने के

पश्चात् जिसने जीवन में श्री राम का भय स्वीकार कर लिया, वस एक मात्र ईश्वर का भय जिसके जीवन मे विद्यमान है, वह व्यक्ति संसार की दृष्टि से निर्भय है ।

रामचरितमानस मे कई ऐसे प्रसङ्ग आते है, जहा भगवान राघवेन्द्र को भी यही स्वीकार करना पड़ता है, लेकिन यह सोद्देश्य है। संकेत आता है सुग्रीव के प्रसङ्ग में—सुग्रीव के चरित्र मे प्रीति भी मिली और प्रतीति भी मिली। भगवान ने मित्र भी वनाया और वालि का वध करके किष्किन्धा का राज्य भी दे दिया। पर, सुग्रीव प्रीति और प्रतीति का दुरुपयोग करने लगे। भगवान श्री राम ने कहा था कि, अङ्गद के साथ तुम राज्य करो, पर निरन्तर इस वात का ध्यान रखना कि जनकनंदिनी सीता का तुम्हें पता लगाना है। तो सुग्रीव जा करके राज्य का आनन्द तो लेने लगे, लेकिन जनकनंदिनी सीता का पता लगाना है, इस वात को उन्होंने भुला दिया। वे निश्चिन्त हो गए। सोचा, वड़े भोले है हमारे श्री राम, वड़े उदार है, कोई रुष्ट थोड़ी होगे। कोई दण्ड थोड़ी देगे। और वड़े उदार हैं तो फिर अभी जल्दी क्या है। अभी भोगों का आनन्द ले लें, फिर कभी सीता जी का पता लगा लेंगे। तव ? फिर वही वात आती है। वर्षा भी वीत गई, शरद ऋतु आ गई तो भगवान श्री राम ने एक नया अभिनय किया, नया नाटक किया। और वह क्रोध का अभिनय था। भगवान ने सोचा इस अभिनय को किसके सामने प्रगट करना चाहिए ? तो, जो सवसे वड़े भय के समर्थक थे वे तो लक्ष्मण जी ही थे। यह रामायण में भय के आचार्य है। प्रीति के आचार्य है, भरत जी महाराज, और प्रतीति के आचार्य है हनुमान जी महाराज, पर भय के आचार्य हैं लक्ष्मण जी। जीव को भगवान की प्रीति देना, यह श्री भरत की भूमिका है। जीव के हृदय मे विश्वास उत्पन्न करना, यह श्री हनुमान जी की भूमिका है, पर जीव को निर्भय न होने देना, डराते रहना, यह लक्ष्मण जी की भूमिका है। और आध्यात्मिक अर्थों मे भी इसका साङ्केतिक तत्त्व है। लक्ष्मण जी मूर्तिमान कालतत्त्व है। और इसका अभिप्राय यह है कि, ईश्वर ने सृष्टि में अनेक वस्तुएं ऐसी वनाई हैं जो व्यक्ति को वड़ी अच्छी लगती है, लेकिन ईश्वर ने

एक ऐसी वस्तु भी वनाई है कि जिसकी कल्पना से भी व्यक्ति काँपने लग जाता है। और वह कौन है ? वह काल है। इसका अभिप्राय है कि, जीवन मे अगणित वस्तुओ के साथ मृत्यु भी तो विद्यमान है। काल का सत्य भी विद्यमान है। और यही काल का सत्य, श्री लक्ष्मण है। तो भगवान ने श्री लक्ष्मण से कहा—राज्य को पा करके होना तो यह चाहिए था कि सुग्रीव की प्रीति और विश्वास की भावना और अधिक वढ़ती, पर—"सुग्रीवहुँ सुधि मोरि विसारी।" सुग्रीव ने मेरी याद भुला दी। शकर जी से पार्वती जी ने यही कहा कि महाराज ! अगर भगवान के स्वभाव का इतना बढ़िया वर्णन किया जाय कि वे दोप नही देखते, दण्ड नही देते, तव तो व्यक्ति मनमाना आचरण करेगा ? तो शंकर जी ने कहा कि, अगर कोई ऐसा दुरुपयोग करता है तो समझ लो कि उसने भगवान के स्वभाव को सही नही समझा। क्योंकि—

उमा राम सुभाउ जेहि जाना ।
ताहि भजन तजि भाव न आना ॥

तो सुग्रीव की प्रीति और प्रतीति वढनी चाहिए थी। लेकिन—

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी ।
पावा राज कोष पुर नारी ॥

सुग्रीव तो भूल गया। लक्ष्मण जी ने पूछा—फिर आपने क्या निर्णय किया ? प्रभु ने कहा—

जेहि सायक मारा मै बाली ।
तेहि सर हतौ मूढ़ कहँ काली ॥

"जिस वाण से मैने वालि का वध किया था, मूर्ख सुग्रीव का वध भी कल उसी वाण से करेगे।" लक्ष्मण जी कुछ प्रसन्न भी हुए, पर उन्हे लगा कि कुछ छिद्र रहने दिया गया है प्रस्ताव मे। कह रहे है कि,—"सुग्रीव को कल मारेगे।" तो क्या हम लोगो को कोई तैयारी

करनी है, कल मारने के लिए ? यह काम तो आज ही होना चाहिए और फिर प्रभु की ओर देख करके कहा,—"महाराज ! तो फिर यह मैं ही कर दूँ ? क्यो ? रामायण में काल के कई प्रतीक है। भगवान का वाण काल है। श्री लक्ष्मण जी भी काल है। और शंकर जी के अवतार हनुमान जी भी काल है। जव भगवान अपने वाण का स्मरण करते है तो—

"लव निमेष परमानु जुग बरस कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु को दंड॥

भगवान श्री राघवेन्द्र अपने वाण को भेजने के लिये, काल के द्वारा सुग्रीव को दण्ड देने के लिये, प्रस्तुत हैं। तो यह जो काल के चैतन्य रूप है, वे वोल पड़े, महाराज ! उस वाण को क्यो भेजते है ? इसी वाण को भेज दीजिये ! मै ही चला जाता हूं ! और कल पर टालना ठीक नहीं है। पिता जी ने सोचा, कल आपको राजा वना देंगे तो वना ही नहीं पाये। जिस समय संकल्प आया, तुरन्त ही वना देते तो यह संघर्ष न होता, यह समस्या सामने नहीं आती। इसीलिये कल नही, मैं अभी जाता हूं, और दण्ड दिये देता हूं। तो भगवान राम के होठों पर हंसी आ गई ! उन्होंने कहा, लक्ष्मण ! तुम मारने लिये सचमुच इतने उतावले हो गये। लक्ष्मण जी ने कहा, "मुझे तो पहले ही सन्देह था कि आप, केवल नाटक ही नाटक कर रहे है। सचमुच आपके हृदय में ऐसी कोई योजना नही है। अच्छा, तो फिर आप चाहते क्या है ? भगवान श्री राम ने लक्ष्मण को मानवीय मनोविज्ञान का वहा पर वड़ा सुन्दर निर्देश दिया।

संसार में अधिकांश व्यक्तियों के साथ समस्या यह है कि प्रेरक के रूप में या तो कोई लोभ चाहिये या भय की वृत्ति चाहिये। यह कहना तो सरल है कि व्यक्ति मे विवेक होना चाहिये, पर संसार में अनगिनत व्यक्तियो में से विवेक के द्वारा संचालित होने वाले व्यक्ति गिने चुने होते है। अधिकांश व्यक्ति जो है, वे लोभ या भय की वृत्ति से ही संचालित होते है। तो क्या किया जाय ? क्या भय और लोभ

की वृत्ति को मिटा दिया जाय ? पर, अगर भय और लोभ की वृत्ति को आप समाज से पूरी तरह मिटाने की चेष्टा करेंगे, तो भय और लोभ की वृत्ति समाज से पूरी तरह मिटेगी ही नही। क्योंकि, सृष्टि में भी सभी विवेक में स्थित हो जायं तो सृष्टि का जो त्रिगुणत्त्व है या जो गुणदोष का मिश्रण है, उसका स्वरूप ही नहीं रह जाएगा। तो फिर एक ही उपाय है कि जो लोभ और भय की वृत्ति व्यक्ति के अन्तःकरण में है, उसको मिटाने के स्थान पर उसका सदुपयोग किया जाय। और यही सदुपयोग भगवान श्री राम, लक्ष्मण को वता रहे है। उन्होंने कहा—"लक्ष्मण ! समस्या यह है कि सुग्रीव वड़े डरपोक स्वभाव का वड़े भयभीत स्वभाव का, व्यक्ति है। वह वालि के डर के मारे ही तो मेरी शरण में आया था ? सुग्रीव में दो वाते थी— क्या ? या तो लोभ था या फिर डर था। एक ओर तो उसको डर था कि वालि मुझे मार डालेगा और दूसरी ओर उसके मन में लोभ था कि वालि ने जो राज्य छीन लिया है, वह मिलेगा या नही ? तो भई ! वह लोभ और भय की वृत्ति से ही मेरी भक्ति की ओर अग्रसर हुआ और मैंने दोनों का समाधान कर दिया। वालि का वध करके मैने भय का समाधान कर दिया और उसको किष्किन्धा का राज्य दे करके मैंने लोभ का समाधान कर दिया। तो इस प्रकार मैंने उसके लोभ की भी पूर्ति कर दी और उसके भय को भी मिटा दिया। लेकिन, इसका परिणाम तो उल्टा हो गया ? कभी-कभी मीठी दवा भी जैसे प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देती है। भगवान ने कहा कि इसका परिणाम यह हुआ कि, सुग्रीव के जीवन में इनका दुरुपयोग आ गया। तो तुम एक काम करो, वात वन जायेगी। क्या ? वोले—जरा सा जा करके सुग्रीव को फिर से डरा दो ! डरपोक तो है ही, फिर से भक्त वन जायेगा। लक्ष्मण ने कहा,—"अभी लीजिये !" उनका तो यह प्रिय काम है, वे तो भय के आचार्य ही है। पर, ज्यों ही लक्ष्मण जी चलने लगे प्रभु ने हाथ पकड़ लिया, वोले—याद रखना ! क्या ? वोले,—"सुग्रीव जितना डरपोक है उतना ही भगोड़ा भी है। तो ऐसा न डरा देना कि भाग जाय ।" तव ? वोले—"भय देखाइ लै आवहु" "ऐसा डराना कि इधर आवे,

कही और न जाने पावे।" भगवान राम ने दोनो को एक सूत्र में वॉध दिया। उन्होने कहा—"लक्ष्मण ! भय का उद्देश्य, भय नही प्रेम है।" रामायण मे इसका सूत्र वडा सुन्दर है। क्या ?—जो भय, केवल भय के लिये है वह भय वडा घातक है। और जिस भय का उद्देश्य वस्तुत: प्रेम की सृष्टि करना है, वह भय ही सार्थक है। एक मॉ भी अपने वालक के मन मे भय उत्पन्न करती है। अगर वालक के कही सडक पर जा करके गाड़ी के नीचे आने की सम्भावना हो, मार्ग भूल जाने की सम्भावना हो, तो मॉ भी वालक को डरा करके जव रोकती है तो उसका उद्देश्य वस्तुतः वालक को वचा करके अपनी गोद में खीच लेना है। इसी उद्देश्य से भगवान राघवेन्द्र ने यह कहा कि, "लक्ष्मण! तुम्हारी भी आज परीक्षा है। क्योकि, सुग्रीव को ससार मे डर लगा तो भागकर मेरे पास आया, तो यह तो डर का सदुपयोग हो गया, पर कही इसके वाद मुझसे डर करके संसार की ओर चला गया तो इससे वढ़ करके डर का तो दुरुपयोग होगा ही नही। इसलिये तुमको इस कार्य को इस ढग से करना है कि वह भागकर कही और न चला जाय, मेरे पास ही आवे।" और सचमुच लक्ष्मण जी इसी कार्य को करने के लिये जाते हैं। यह वात और है कि—जव लौट करके आये और एकान्त में प्रभु ने पूछा—"लक्ष्मण ! तुमने सुग्रीव को कैसे डराया !" तो लक्ष्मण जी हँसने लगे। वोले—"महाराज ! मैं क्या डराता ? मुझसे पहले ही दूसरे सज्जन वह काम कर चुके थे।" कौन ? लक्ष्मण जी वोले—जिनको आप "तै मम प्रिय लछिमन ते दूना" कह चुके थे। इसका अभिप्राय क्या ? पहले वाण को भेज रहे थे, वह भी काल ही था। फिर लक्ष्मण जी गये, वह भी काल हैं। लेकिन इन दोनों कालों से पहले "करालं महाकाल कालं कृपालं" के अवतार हनुमान जी जो है, वे दोनो कार्य कर चुके थे। लोभ और भय दोनों वृत्तियो का सदुपयोग उन्होने कर दिया था। गोस्वामी जी ने लिखा—

> इहां पवनसुत हृदयँ विचारा।
> राम काजु सुग्रीव बिसारा॥
> निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा।
> चारिहु बिधि तेहि कहि समझावा॥

हनुमान जी, सुग्रीव के पास पहुंचे। सुग्रीव ने स्वागत किया; क्योंकि हनुमान जी के बड़े ऋणी हैं! हनुमान जी ने कहा—"आज आपको कथा सुनाने आये है।" सुग्रीव ने कहा—"आपने तो पहले भी बड़ी अच्छी कथा सुनाई थी राम के स्वभाव की। राम के शील की कथा तो आप सुना ही चुके है। वस्तुतः सुनने की इच्छा तो थी ही नहीं, पर सीधे हनुमान जी से 'नाही,' नहीं कर सकते थे। तो हनुमान जी ने कहा—"कथा सुनाई तो थी, पर कथा अधूरी थी। आज आपको पूरी कथा सुनाने आए है? स्वभाव की कथा तो आपने सुन ली, अब ईश्वर के प्रभाव की कथा भी आप सुन लीजिये! स्वभाव ही नही है, उसमें प्रभाव भी है।" तो—चार तरह से वर्णन किया। एक लोभ दिखाया और एक भय दिखाया। लोभ दिखाते हुये कहा,—"सोचिये! जब आपने सीता जी का पता नहीं लगाया, केवल सीता जी का पता लगाने काआपने वचन दिया और इससे प्रसन्न हो करके उन्होंने आपको किष्किन्धा का राज्य दे दिया तो अगर आप पता लगा देंगे तो न जाने क्या दे देंगे? आप आगे के लिये जरा विचार तो कीजिये, कितने बड़े लाभ की सम्भावना है?" और उससे भी अधिक डर दिखाया क्योंकि, मुख्य भूमिका यहां डर की थी। हनुमान जी ने सुग्रीव से पूछ दिया—"प्रभु ने जब बाण का प्रहार बालि पर किया था तो आपने देखा था कि फिर वह वाण, बालि को लगने के पश्चात् कहा गया? सुग्रीव ने कहा—"महाराज! वह बाण तो बालि के हृदय से निकल करके प्रभु के तरकश में आ गया था।" पूछा,—"क्यों लौट आया?" तो सुग्रीव ने कहा,—"आपने तो व्याख्या बताई थी कि प्रभु जो है वे अपने आश्रितों को दूर नही करते, इसलिये वाण को भी फिर से बुला लेते हैं। वाण, उनका आश्रित है और उनका "आश्रय वात्सल्य" गुण ही बाण को लौटाने में प्रगट होता है।" हनुमान जी ने कहा—"यह तो स्वभाव का पक्ष है। पर, इसका एक दूसरा पक्ष भी है।" क्या? बोले—"मुझे तो लगता है कि वह वाण आपके लिये ही लौटा करके रखा गया है कि, अगर कहीं सुग्रीव ने भी वालि के समान आचरण किया तो उसको भी इसी वाण से मारना ठीक रहेगा।" और सचमुच भगवान श्री राम के मुख से वाक्य भी यही निकला था।

जेहि सायक मारा मैं बाली ।
तेहि सर हतौं मूढ़ कहँ काली ।।

जिस बाण से मैने वालि का वध किया, इस मूर्ख का वध भी मै उसी बाण से करूँगा। वस, लोभ और भय की वृत्तियाँ सजग हुई और तुरन्त ही भयभीत हो करके उन्होने वन्दरों को, जनकनंदिनी सीता का पता लगाने के लिये भेजना प्रारम्भ किया। और फिर वे भगवान की दिशा मे लौट आए। तो ऐसी स्थिति मे यों कह सकते है कि व्यक्ति को निर्भय तो बनना है, पर ऐसा निर्भय नहीं बनना है कि वह निर्भय हो करके मनमाना पाप या दुराचरण करने लगे। नही, नही, व्यक्ति के अन्तःकरण में ईश्वर का भय वना रहे, यह लक्ष्मण जी की प्रेरणा है। और इस सत्य को रामचरितमानस के अनेकों प्रसङ्गो मे दिखाया गया।

तो यह भय का मनोविज्ञान जो है भक्ति में बड़े महत्व का है।

लेकिन, गंगा के किनारे एक वड़ा विचित्र व्यक्ति मिल गया। और वह ऐसा विचित्र व्यक्ति था कि, जिसने भय की वृत्ति को विल्कुल स्वीकार ही नहीं किया। भगवान राम जो इतना हँसे और हँस करके लक्ष्मण जी ओर देखा तो भगवान राम की इस हँसी के पीछे कई कारण थे। और केवट की ये जो अटपटी वाणी है, केवट की जो निर्भयता है, उसका अपना अलग रहस्य है। मै आशा करता हूं कि आप पूरी एकाग्रता से सुन रहे होंगे। अगर ईश्वर की उदारता, अतिरेक, व्यक्ति को निर्भय वना करके पाप की दिशा में ले जाय तो यह उदारता का दुरुपयोग है। और अगर, भय की वृत्ति इतनी प्रवल हो जाय, कि व्यक्ति भगवान के स्वभाव को ही भूल जाय, तो फिर यह भय की वृत्ति भी बडी घातक है। तो इन दोनो का सन्तुलन कैसे वना रहे, ये वड़े महत्व की वात है ! ईश्वर की उदारता और दूसरी ओर ईश्वर का भय, इन दोनो का सन्तुलन आवश्यक है। केवट के रूप मे यह जो पात्र सामने आता है उस पात्र की विशेषता यह है कि उसमे भय नही है। और वह अपने स्थान पर विल्कुल ठीक है। कल

जो वात आपके सामने कही जा रही थी यद्यपि आज वहुत से नए लोग आए हुए है पर साङ्केतिक भाषा यह थी कि केवट की सारी निर्भयता का रहस्य क्या है ? अगर कोई केवट से यह पूछ दे कि तुम इतने निर्भय होकर, यहाँ तक कि जिन लक्ष्मण जी के भय से सारा संसार कापता है, और केवट ने भगवान राम से वार्तालाप करते-करते कह दिया :—

"बरु तीर मारहिं लखनु पै जब लगि न पाँव पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं॥

—"लक्ष्मण जी अगर बाण भी मार दें, पर जव तक मै आपके चरण पखार न लूंगा तव तक पार नहीं उतारूँगा।" तो केवट की इस निर्भयता के पीछे रहस्य यही है जो उसने प्रारम्भ में दावा किया कि, —"मैं आपके मर्म को जानता हूं।" इसका अभिप्राय है कि एक ऐसा परिज्ञान केवट को हो गया है कि; वह ज्ञान हो जाने के पश्चात् ईश्वर भय की वस्तु नही रह जाता, वह केवल प्रेम का ही रूप हो जाता है। वही संकेत आता है कि लक्ष्मण जी सोचते है कि इसके जीवन में भय क्यों नहीं है ? और भगवान राम का तात्पर्य है कि लक्ष्मण ! भय का उद्देश्य भी तो प्रेम ही उत्पन्न करना है ! और जव इसके जीवन में पहले ही प्रेम उत्पन्न हो चुका है, तो अव भय की क्या आवश्यकता है ? केवट के अन्तःकरण में जो इतनी निर्भयता है उसका तात्पर्य यही है जो वात कल आपके सामने सूत्र के रूप में कही गई थी।

केवट, जव गंगा के किनारे भगवान राम को खड़ा देखता है और भगवान श्री राघवेन्द्र उससे यह कहते है कि,—"नौका ले आओ।" तो, केवट सच्चे अर्थों में भगवान का पूरा रहस्य समझ गया, स्वभाव समझ गया, मर्म समझ गया। और वह मर्म यही था कि उसको ज्ञान है कि श्रीराम के सामने न तो पार जाने की समस्या है, न नौका की समस्या है। ब्रह्माण्ड को दो पग में नाप लेने वाला क्या मेरी नौका के द्वारा गङ्गा पार करेगा ? तव ? उसे भगवान के कई रहस्यों का ज्ञान हो चुका है। एक तो केवट का यह प्रस्ताव था भगवान राम से कि, "महाराज ! आप इस घाट से पार होना चाहते है या इस घाट को

छोड़कर अन्य स्थान से पार होना चाहते है ?" केवट का अभिप्राय है कि, अगर आप इस घाट से पार होना चाहते है तो आपको मेरी इच्छा के अनुकूल चलना होगा, पर अगर आप केवल पार होना चाहते है तो मै सहायता देने के लिए तैयार हूं। क्या ? बोला—"एहि घाट ते थोरिक दूर अहै" इस घाट को छोड़ दीजिए और मेरे साथ चलिए। गंगा नदी मे एक ऐसा स्थान है जहां पर कमर तक जल है। मै आगे, आगे चलकर मार्ग दिखाता चलूंगा और आप तीनों पार हो जाइएगा। न तो आपको चरण धुलाना पड़ेगा और न तो आपको कोई कष्ट करना पड़ेगा और आप पार भी हो जाएंगे।" तो जब केवट यह कह रहा था तो उसको इस रहस्य का पता था कि भगवान राम अपने चरित्र के द्वारा घाट बनाने आए हैं, घाट छोड़ने नही आए है। गोस्वामी जी ने कहा—"श्री राम जो है वह नदी में जैसे घाट हों, सीढ़ियां हों, इस तरह से हैं।" अगर नदी की तीव्र धारा हो तो नदी में पक्का बाँध बना करके सीढ़ियाँ बना देने में दो लाभ है। एक तो नदी की धारा के द्वारा जो किनारों के टूटने की संभावना है, वह संभावना नष्ट हो जाती है और दूसरी ओर जो व्यक्ति स्नान करना चाहता है उसके लिए सीढ़ी के माध्यम से सुगमता हो जाती है। जो तैराक है वे तो कहीं से भी छलांग लगा सकते है, पर जिस व्यक्ति को तैरना नहीं आता है तो अगर नदी के किनारे घाट बना हुआ है तो वह घाट के माध्यम से, क्रमशः सीढ़ियों से नीचे उतर करके स्नान कर लेता है। तुलसीदास जी से किसी ने पूछा कि,—परशुराम के रूप में अवतार तो था ही फिर राम की क्या आवश्यकता थी ? राम क्यों आए ? तो गोस्वामी जी ने कहा कि परशुराम जी जो है वे नदी के रूप में आए। उनका क्रोध जो है वह नदी की तरह है और उस समय वह समाज की आवश्यकता थी। जब अन्याय बढ़ा तो उसको मिटाने के लिए परशुराम जी ने क्रोध को स्वीकार किया। लेकिन, नदी आवश्यक होने के साथ-साथ कूल कगारों को न काटने लगे, गांवों को न डुबाने लगे, बस तभी तक उपयोगी है। जब नदी में बाढ़ आ जाती है तो वही नदी, जीवन के स्थान पर मृत्यु का सन्देश ले करके आती है। गोस्वामी जी ने कहा

कि पहले परशुराम जी का क्रोध जो था वह किनारों के बीच में बह रहा था लेकिन बाद में उनके क्रोध में ऐसी बाढ़ आयी कि सारा समाज, सारी मर्यादाएँ कटने लगीं और सारे समाज में आतंक और भय की वृत्ति व्याप्त हो गई। तो श्री राम क्यों आए? वह पंक्ति रामायण में सम्भवतः आपने पढ़ी होगी। गोस्वामी जी कहते है—

घोर धार भृगुनाथ रिसानी।
राम सुबद्ध घाट बर बानी॥

राम का व्यक्तित्व, राम की वाणी, यही घाट है। दो बातें हैं। एक तो भगवान राम आगे आ गए तो समाज भय से मुक्त हो गया, क्यों कि भगवान राम ने सारा भय झेल लिया और दूसरे, भगवान श्रीराम के चरित्र में जो मर्यादा की सीढ़ियाँ है उनका बड़ा महत्व है। केवट यह रहस्य भी जानता है कि जब ये मर्यादा का पालन करने आए हैं तो मर्यादा छोड़ेंगे नही, और मर्यादा तो यही है कि नदी को नाव से ही पार करना चाहिए। इसलिए केवट मुस्करा करके कहता है कि आप थोडी देर के लिए घाट छोड़ दीजिए! तो केवट को यह भी मर्म ज्ञात है कि हमारे मर्यादा पुरुषोत्तम घाट को बनाने वाले है, कभी भी घाट को मिटाने वाले नहीं है। ये आग्रह करेंगे कि मैं इसी घाट से चलूँगा। तो केवट ने कहा कि महाराज, आपका यदि आग्रह हो कि इसी घाट से चलूँगा तो फिर आपको मेरी शर्त माननी होगी।

केवट की सारी अटपटी वाणी के पीछे अगर गहराई से देखें तो केवट के अन्तःकरण का प्रेम, केवट के अन्तःकरण का विश्वास ही प्रगट होता है। केवट जिस तरह की वाणी बोल रहा है उस वाणी के पीछे केवट के मन में अगाध विश्वास है। उसका तात्पर्य है कि प्रभु! अगर मै भक्त होता तो भक्ति के मार्ग से आपको पाने की चेष्टा करता। मानों उसका संकेत यह था कि ये दोनों जो प्रभु के आस-पास बैठे हुए हैं,—दाहिनी ओर तो खड़े थे लक्ष्मण जी और बाई ओर खड़ी थी श्री सीता जी और बीच में भगवान श्रीराम और सामने था केवट। तो यही दोनों जो हैं, वही भगवान की प्राप्ति के मार्ग है।

लक्ष्मण जी जीवो के आचार्य है और श्री सीता जी साक्षात् भक्ति है। भगवान श्रीराम मुस्करा करके केवट से पूछ सकते है कि,—"भई ! बिना आचार्य और भक्ति के तुम मुझे कैसे पा सकते हो ?" सूर्पणखा भगवान को पाने के लिए आई तो भगवान ने इन्ही दोनो के पास भेजा। इसका तात्पर्य है कि भक्ति और आचार्य के द्वारा भगवान मिलेंगे। भगवान पूछ सकते है कि—"भई ! तुम इन दोनो की ओर ध्यान ही नही दे रहे हो ? यह क्या वात है ? तुम इतने निश्चिन्त कैसे हो ?" तो केवट के मन की भावना यह थी कि,—"महाराज ! अगर मै आपको पाने के लिए मार्ग की कल्पना में होता तो इनका आश्रय लेता। पर जव मैं आपको नही पाना चाहता, आप ही मुझे पाना चाहते है तो फिर मै क्यो चिन्ता करूँ ? और इसका अभिप्राय क्या है ? किसी व्यक्ति को कोई मार्ग वताने लगा कि इधर से जाना तो ये मिलेगा, फिर चौराहा मिलेगा, फिर इधर मुड़ जाना........। वह मुस्कराने लगा क्योकि उसे कही जाना ही नही था। गोस्वामीजी ने एक वड़ी बढ़िया वात लिखी। गोस्वामी जी ने कहा—महाराज ! अव तो मैने निर्णय कर लिया है कि न मार्ग पूछूंगा और न मार्ग की जो साधनाएँ है उन पर दृष्टि डालूँगा। क्या करोगे? तो जैसे आप किसी मित्र से मिलना चाहे तो दो ही उपाय है। या तो आप मित्र के घर जावे या मित्र आपके घर आवे। तो वहुत व्याकुलता अगर मिलने की हो तो मित्र के घर चले जाइए। लेकिन, चले जाने में एक डर है कि अगर मित्र और आपके घर के वीच में कही कई मार्ग हुए और, आप जव तक मित्र के घर पहुचे तव तक मित्र किसी और मार्ग से चल पड़ा तो यह आशंका है कि आप घर पहुच करके भी उससे मिल नही पावेगे। गोस्वामी जी ने कहा कि महाराज ! हमने तो यह निश्चित कर लिया है, क्या ? वोले—वस, अव तो—"नाथकृपा ही को पन्थ चितवत हौ दिन-रात।" गोस्वामी जी ने कहा—प्रभु ! अगर आपकी कृपा को पाने का एक ही मार्ग होता तो मै भी चल पड़ता। अगर आप वशिष्ठ पर कृपा करते तो मैं वशिष्ठ के मार्ग पर चलता। पर जव मैने देखा कि आप केवट पर भी कृपा करते है तो मै समझ गया कि कही मै इधर वशिष्ठ के मार्ग से चलूँ और उधर आप केवट के

मार्ग से चल दें, और मैं आपसे न मिल पाऊं ? इसलिए, मैं तो इस चौरास्ते पर बैठ गया हूं। जिधर से भी आपकी कृपा आएगी, मिल जाएगी। केवट का अभिप्राय है प्रभु ! आचार्य और भक्ति का आश्रय वह ले जो आपको पाना चाहे, पर जिसको आप पाना चाहें, आप जिसे धन्य बनाना चाहें उसे चिन्ता करने की क्या जरूरत है ? मैने न जप किया, न तप किया। मैने कोई साधना जीवन में नहीं की, आप को आमंत्रित नही किया और इतना होने पर भी आप आए। तो इसका अभिप्राय है कि आप अपनी ही करुणा से, अपनी ही कृपा से, स्वयं मुझे धन्य बनाने के लिए आए हुए है। और आए हुए है तो प्रभु ! मैं तो समझ ही गया आपका रहस्य। इसीलिए मै दिखाना चाहता हूं। क्या ? केवट भगवान श्रीराम से यह वाक्य कहने लगा कि, आपको मै पार तव उतारूँगा जव आपके चरण धो लूँगा। तो वहां तक तो कोई वात नहीं है, लगा कि चरण का आग्रह है। लेकिन उसके वाद केवट का अगला वाक्य वड़ा विचित्र था। और वह वाक्य यह था कि चरण मैं तब धोऊँगा, जव आप अपने मुह से कहेगे कि मेरा चरण धोओ, नही तो मैं नहीं धोऊँगा। यह तो वड़ी विचित्र वात है। पर केवट का अभिप्राय क्या है? केवट से किसी ने एकान्त में पूछा,—"तुमने भगवान से सीधे चरण क्यों नही मांग लिया ? तुमने भगवान से यह क्यों कहा कि जव आप धोने के लिए कहेंगे तभी धोऊँगा ?" केवट ने कहा,—जिसके पास साधन का वल हो वह भगवान से चरण मांगे। कही मैं भगवान से चरण मांगता और भगवान चरण का मूल्य वता देते—कि इतना जप, इतनी भक्ति, इतनी साधना के वाद मेरा चरण मिलता है ! इसीलिए महाराज ! जिसको बिना दाम पाना है वो तो देने वाला जाने, उसको अगर देने की गरज हो तो दे, न देना हो तो न दे। मैं किसी साधन के द्वारा आपको पाने में समर्थ नही हूं, किसी तपस्या के द्वारा आपको पाने में समर्थ नही हूं। मैं आपको पाऊँगा तो आपकी कृपा से, आपके स्नेह से। और आपके स्नेह को तो मैंने इसी रूप में देख लिया कि आप नदी को पार करने नहीं आए है, आप आज केवट को महान वनाने आए हैं। केवट को वड़ा वनाने आए है।

भगवान के चरित्र की सबसे बड़ी विलक्षणता क्या है? दो प्रकार के व्यक्ति होते है। एक तो बड़ा व्यक्ति वह है जो स्वयं बड़ा है और दूसरे उसके सामने छोटे है। दूसरा बड़ा व्यक्ति वह है जो छोटे से छोटे व्यक्ति को इतना बड़ा बना दे कि उसके जीवन में लघुता की भावना रह ही न जाय। तो ऐसा बडा होना तो समाज में सरल है कि जिसके सामने व्यक्ति लघु प्रतीत हो, लेकिन भगवान राम का बड़प्पन यही है कि वे दूसरों को बड़ा बनाते है। इसलिए गोस्वामीजी ने इसी शैली का प्रयोग किया। भगवान राम की सुन्दरता क्या है? भगवान राम का ज्ञान क्या है? भगवान राम का बल क्या है? गोस्वामी जी इसकी एक नई परिभाषा करते है। जब गाँव की स्त्रियों ने भगवान राम को वन की ओर जाते देखा तो गाँव की स्त्रियों ने कहा कि ये राजकुमार बड़े सुन्दर है। लेकिन इतने सुन्दर ढंग से उन्होने सुन्दरता की प्रशंसा की जो सचमुच अद्‌भुत है। ऐसी कविता आपने बहुत पढ़ी होगी और रामायण में भी है कि भई! चन्द्रमा, इनके सामने लज्जित हो जाता है या उसका सौन्दर्य इनके सामने समाप्त हो जाता है। लेकिन गाँव की स्त्रियों ने कहा कि,—सखि! इन दोनो राजकुमारों को देख करके लगता है कि यह जो नीलम और सोना है—तो वस्तुतः नीलम में पहले यह चमक नही थी, बोली—इन्ही सांवले रंग के राजकुमार ने छू दिया तो नीलम मे नीलिमा और चमक आ गयी। और लक्ष्मण जी ने छू दिया तो पत्थर में सोने का रंग आ गया और सोने का गुण आ गया।

> राजकुँअर दोउ सहज सलोने।
> इन्हतें लही दुति मरकत सोने॥

और इस परिभाषा का अभिप्राय क्या है? कि सुन्दर वह नही है जो दूसरे को कुरूप बनाकर सुन्दर बने, सुन्दर वह है कि जिसके सामने पहुंच करके कुरूप भी सुन्दर बन जाय। धनी वह नही है कि जिसके धन के सामने दूसरे दरिद्र जान पड़ें, बल्कि धनी वह है जो दूसरे की दरिद्रता दूर करके वहाँ पर भी धन की सृष्टि कर दे। विद्वान वह नहीं जिसकी विद्वत्ता के सामने प्रत्येक व्यक्ति मूर्ख सिद्ध हो जाय,

वल्कि विद्वान वह है जो दूसरे को भी विद्वान वना दे। वहुत पहले मुझे एक विद्वान मिले। कहने लगे मैं तुम्हारे प्रवचन में वोलना चाहता हूं। मैंने पूछा—"आप क्या वोलेंगे ?" उन्होंने कहा—"जो तुम कहोगे, मैं उसका उल्टा कहूंगा। तुम अगर कहोगे कि ईश्वर है तो मै कहूंगा कि ईश्वर नही है और तुम अगर कहोगे कि ईश्वर नहीं है तो मैं कहूंगा ईश्वर है।" वड़ी विचित्र सी वात है, इसका तात्पर्य क्या ? कई लोग यह समझते है कि विद्वत्ता का अर्थ है कि हम दूसरे को पराजित कर दें और सिद्ध कर दें कि तुम हमारे योग्य नही हो। पर सच्चे अर्थो में रामायण में—भगवान की सुन्दरता यह है कि उन्होने वन्दरों को सुन्दर बना दिया। भगवान राम की महिमा यह है कि उन्होने केवट को वड़ा वना दिया। केवट ने कहा—"प्रभु ! आप मुझको वड़ा वनाने के लिए आये हुये है। छोटों को वड़ा बनाने के लिये, यह करुणा का पक्ष है, साधना का पक्ष नही है। और करुणा का पक्ष है तो ऐसी स्थिति मे मेरे अन्त:करण मे न भय की आवश्यकता है, न भक्ति की आवश्यकता है और न ही साधन की आवश्यकता है।" केवट ने भगवान श्री राम से कहा कि आप अपने चरण धोने के लिये कहिये और सचमुच भगवान राम ने अपनी साहित्यिक भाषा में कहा। जब केवट अपनी वात कह चुका तो भगवान राम के मुंह से निकला—अच्छा भाई !

"कृपासिन्धु बोले मुसुकाई।
सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥"

"भाई ! तुम वही काम करो जिससे तुम्हारी नाव न जाए।" केवट विल्कुल नही उठा—जल लाने के लिये, चरण धोने के लिये। प्रभु ने कहा—"अव क्यों नही उठ रहे हो ?" वोला—"महाराज यह भाषा समझना मेरे वश की वात थोड़ी है, यह तो किसी पण्डित के वश की है। सीधे-सीधे कहिये कि आप क्या चाहते है ? आप तो घुमावदार भाषा कह रहे हैं—'वही काम करो जिससे तुम्हारी नाव न जाय।" भगवान राम ने कहा—"अच्छा भाई, जिस भाषा में तुम सुनना चाहते हो तो,—

वेगि आनु जल पायँ पखारू।
होत बिलंब उतारहि पारू ॥

—"अच्छा भाई! जल्दी से जल ले आओ, मेरा चरण धोकर मुझे पार उतार दो।" केवट ने मुस्कुरा करके कहा—"बस, बस, मै बताना चाहता था कि जीव ही ईश्वर को पाने के लिये व्यग्र नहीं है, ईश्वर भी इतना कृपालु है कि वह जीव को पाने के लिये बेचैन है।" और जीव को पाने की व्यग्रता यदि ईश्वर के मन मे आ गई, अगर वह क्षुद्र को बड़ा बनाना चाहता है तो प्रभु! मै अपनी ओर क्यो देखूँ? मैं क्यो डरूँ? आप अपने मुह से कह करके संसार के सामने सत्य को प्रगट कर दीजिये! सच्चे अर्थों में आप यदि किसी पर कृपा करना चाहते है तो उसमे किसी पात्रता की आवश्यकता नही है। और सचमुच भगवान श्रीराम ने केवट की वाणी को इसी अर्थ में लिया। आनन्द लिया। और जनकनन्दिनी सीता और श्री लक्ष्मण की ओर व्यङ्ग भरी दृष्टि से देखा। भगवान राम ने व्यङ्ग मे हँस करके उनकी ओर देख करके कहा कि भई! केवट की बात से तो तुम लोगो को बिल्कुल नाराज नही होना चाहिये, दूसरे हों तो हों। क्यो? भगवान ने कहा—यह तो यात्रा के शुरू में तुम्ही लोगों ने बिगाड दिया। अगर केवट भी ऐसी भाषा का प्रयोग कर रहा है तो तुम लोग क्यो बुरा मान रहे हो? जनकनन्दिनी सीता और लक्ष्मण ने आश्चर्य से प्रभु की ओर देखा!—क्या? बोले—लक्ष्मण! सीता! मैने तुम दोनों से कहा था, "वन में मत चलो," पर तुम लोगों ने कहा—नही, नही, हम लोग भी चलेंगे। तो "नाही" का प्रारम्भ तो तुम्ही दोनो ने कर दिया! तो अगर "मागी नाव न केवट आना।" यह भी "नाही" कर रहा है तो तुम लोगों का ही अनुयायी लग रहा है। तुम लोगों की "नाही" में प्रेम है तो इसकी "नाही" में प्रेम क्यों नही! इसके बाद की चर्चा हम कल करेंगे, आज बस इतना ही।

"बोलिए सियावर रामचन्द्र की जय"

श्री रामः शरणम् मम् ॥

६

आइये, मनः शरीर से गंगा के किनारे चलें और वहा हठीले केवट और भगवान श्रीराम के बीच जो अनोखा वार्तालाप हो रहा है उसका रहस्य हृदयङ्गम करने की चेष्टा करें। भगवान श्री राघवेन्द्र केवट की अटपटी रसमयी वाणी को सुनते ही उन्मुक्त आनन्द से भर जाते हैं। बल्कि गोस्वामी जी के शब्दो में "विहँसे करुनाऐन" तो हंसी का जो सबसे उन्मुक्त रूप है, वह "विहँसना" है। भगवान श्री राघवेन्द्र का यह उन्मुक्त हास्य तथा लक्ष्मण और जनकनन्दिनी सीता की ओर उनका देखना, इस उद्देश्य के सन्दर्भ में ईश्वर के क्रिया कलाप का क्या अर्थ है ? सच्चे अर्थों में तो ईश्वर ही जाने, पर भाव तरग के माध्यम से अलग-अलग भक्तों के हृदय में या भावुकों के हृदय में इस उन्मुक्त हास्य के सम्बन्ध में अलग-अलग कल्पनाएँ होती है।

भगवान श्री राघवेन्द्र के इस आनंदमय हास्य का जो स्वरूप है इसमें गोस्वामी जी ने एक बड़ा विरोधाभासी शब्द लिखा है, जिस पर उन लोगों का ध्यान गया होगा जो साहित्य से परिचित है। और इस सन्दर्भ में जरा शब्दों पर आप विचार करे। यहा पर भगवान श्री राम के लिये जिस शब्द का प्रयोग किया गया वह शब्द है "विहँसे"—श्री राघवेन्द्र उन्मुक्त भाव हँसे से, पर मै तो श्री राघवेन्द्र कह रहा हूं, पर गोस्वामी जी का शब्द आप दोहे में पढ़ते है,—

"विहँसे करुनाऐन" जो करुणा के निवास स्थान श्री राम है, वे हँसे। इसके विरोधाभास पर अगर आप ध्यान देगे तो विचित्रता लगेगी।

भई ! करुणा की वृत्ति जो है उसका सम्वन्ध वहुधा हँसी से नही होता है। साहित्य में हास्य और करुण रस सर्वथा दो भिन्न भाव की सृष्टि करते है। यदि हृदय मे अत्यधिक करुणा उत्पन्न हो, तो आँखो में आँसू के रूप मे करुणा प्रगट होती है। और हृदय मे जव वहुत आनंद की अनुभूति हो तो वो आनन्द जो है, हंसी के रूप में दिखाई देता है। तो भई ! इस दृष्टि से तो "करुणाऐन" के साथ "विहँसे" शव्द का प्रयोग वड़ा विचित्र है ? यदि यह कहते कि करुणानिधान रोये तो वह विलकुल सार्थक शव्द होता। क्योकि करुणा में द्रवता उत्पन्न होती है। या यदि यह कहते कि सच्चिदानन्द भगवान श्री राम हँसे, तो "सच्चिदानन्द" शव्द के साथ "हँसी" शव्द का प्रयोग वड़ा सार्थक लगता। पर गोस्वामी जी तो भगवान श्री राम के उन्मुक्त हास्य के सन्दर्भ मे कहते हैं कि इस हास्य के पीछे केवल आनन्द की वृत्ति नही, करुणा की वृत्ति भी है। आप लोग कृपा करके आज की वातें थोड़ी अधिक एकाग्रता से सुनेंगे ! भगवान राम की हँसी के पीछे जो करुणा की वृत्ति है, इसमें इतने आनन्द की अनुभूति भगवान राम के मन मे होती है, वल्कि इसे यो कह सकते है कि केवट को देख करके भगवान श्री राम के अन्तःकरण मे तीव्रतम करुणा का भाव उदित हुआ। और यह जो भगवान श्री राघवेन्द्र के मुख पर हँसी दिखाई दे रही है, यह आनन्द जो दिखाई दे रहा है, उसकी प्रेरक वृत्ति वस्तुतः करुणा है।

करुणा, दो प्रकार की होती है। एक करुणा तो वह है, जिसमें व्यक्ति व्याकुल तो होता है, लेकिन वदलने की सामर्थ्य उसमें नहीं होती है। इसका अर्थ है कि हमारा और आपका हृदय भी कभी-कभी करुणा के कारण कोमलता से भर जाता है। लेकिन, करुणा से द्रवित होने के वाद भी हम इस घटना को मिटाने मे समर्थ नही है। महर्षि वाल्मीकि के सन्दर्भ मे आपने एक वात पढ़ी या सुनी होगी कि सृष्टि मे सवसे पहली कविता महर्षि वाल्मीकि के मुख से प्रगट हुई। और कविता का जो जन्म हुआ वह करुणा के उदय होने से ही हुआ। महर्षि में करुणा की वृत्ति का उदय इस रूप में हुआ कि, दो पक्षी (युगल) क्रौच और क्रौंची विहार कर रहे थे ! महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी के किनारे वैठे हुए साधना में संलग्न थे। अचानक एक

वधिक ने क्रौंच को वाण मारकर गिरा दिया और क्रौंची विलाप करने लगी। वस, इस दृश्य को देख करके उनके अन्तःकरण मे जो करुणा फूट पड़ी वही करुणा पहली कविता वनी। तुरन्त महर्षि वाल्मीकि के मुख से एक वाक्य निकला :—

"मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।"

निषाद! तुम श्रेष्ठ लोगों के समाज में सम्मान नहीं प्राप्त करोगे, तुम निन्दा की दृष्टि से देखे जाओगे। तुमने आनन्द में डूबे इस दम्पति को, इन पक्षियों को एक दूसरे से अलग कर दिया, इससे बढ़ करके तुम्हारा अनर्थकारी कार्य क्या हो सकता है? तो यह पहला श्लोक है साहित्य का, जो कवि के मुख से फूटा। उसके पश्चात् इन्हीं महर्षि वाल्मीकि ने बाद में भगवान श्री राम की कथा लिखी। और इस तरह से श्री राम की कथा जो है, वह काव्य में दूसरा प्रयोग है। तो वड़ा विचित्र लगता है। इस घटना के बाद महर्षि वाल्मीकि ने राम की कथा क्यों लिखी? और इसका उत्तर यह है कि महर्षि वाल्मीकि के सामने समस्या यह है कि वे करुणा से व्याकुल तो हो गए, लेकिन उन्हें तो ऐसा लगता है कि हम केवल अपना दुःख प्रगट कर सकते हैं, अपनी व्याकुलता प्रगट कर सकते हैं, लेकिन हम इस पीडा को मिटाने में समर्थ नहीं हैं। तो करुणा के वाद उनके मन में जो व्याकुलता हुई, वो किसी ऐसे व्यक्ति की खोज में हुई कि जिसकी करुणा केवल करुणा तक ही सीमित न रह जाय, बल्कि जिसकी करुणा जो है, वह साकार हो करके ऐसे अन्यायपूर्ण कार्य को रोक सके, अनर्थ को रोक सके। और वह सामर्थ्य उन्हें श्री राम में दिखाई दी। भगवान श्री राघवेन्द्र की जो करुणा है वह केवल आँसुओं तक ही सीमित रहने वाली करुणा नहीं है, अपितु उस करुणा के द्वारा—आगे चल करके वर्णन आता है—श्री राघवेन्द्र जिस समय दण्डकवन में जाते है उस समय ऋषि-मुनियों के हड्डियों के ढेर जहाँ-तहाँ लगे हुए हैं। उस दृश्य को देखते ही भगवान राम की आँखों में आँसू आ गया। यही श्री राम की करुणा है :—

अस्थि समूह देखि रघुराया।
पूछी मुनिन्हं लागि अति दाया॥

व्याकुल हो गए ! भगवान श्री राघवेन्द्र ने मुनियों से पूछा यह हड्डियों का ढेर कैसा है? और मुनियों ने व्याकुल स्वर मे यही कहा :—

निसिचर निकर सकल मुनि खाए।
सुनि रघुबीर नयन जल छाए ॥

भगवान श्री राम ने ज्यों ही सुना उनकी आँखों में आँसू आ गये ! पर वे आंसू वहा करके ही रुक नही गये अपितु वर्णन आता है कि अचानक भगवान राम के आँसुओ का प्रवाह तो रुक गया और भगवान श्री राघवेन्द्र ने अपनी भुजाओं को उठाया और अपनी भुजा को उठाकर तुरन्त उनके मुख से जो वाणी निकली, वही करुणा का सही सदुपयोग था। करुणा के द्वारा भगवान के अन्तर्मन में प्रेरणा उत्पन्न हुई और भगवान राम प्रतिज्ञा करते है :—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

और भगवान श्री राघवेन्द्र निशाचर वध की प्रतिज्ञा ही नही करते है, वे ऋषि-मुनियो के आश्रम में जाकर प्रत्येक को अलग-अलग आश्वासन देते है कि आप निश्चिन्त हो करके साधना में संलग्न हो, अब राक्षसों का अत्याचार संभव नहीं है।

तो करुणा की वृत्ति के द्वारा भगवान श्री राघवेन्द्र में जो दया उत्पन्न होती है, वह उस कारण को मिटाने की चेष्टा करती है, जिस कारण से ऐसी दयनीय स्थिति उत्पन्न हुई।

आइए, निषाद के सन्दर्भ में भगवान श्री राघवेन्द्र को जो इतना अधिक आनन्द आया और आनन्द के पीछे भगवान श्री राम की जो करुणा की वृत्ति है उस पर विचार करे। यो अगर देखे तो केवट अत्यधिक दीन-हीन व्यक्ति है। समाज के सन्दर्भ में वह इतना साधारण व्यक्ति है कि प्रतिक्षण उसे यह सुनने को मिलता है कि वह सबसे हीन है, या सबसे छोटा है। पर आगे चल करके वर्णन आता है, श्री

भरत ने निषाद का परिचय सुना कि ये तो श्री राम के "सखा" हैं। तो यह भगवान श्री राम की जो प्रसन्नता है, उस प्रसन्नता का रहस्य यही है कि, भगवान श्री राघवेन्द्र सच्चे अर्थों में व्यक्ति को दीनता और हीनता से उबार करके ऊँचा उठाना चाहते है। और यही नहीं, आप सर्वत्र भगवान राम का यही जीवन दर्शन पायेंगे। गोस्वामीजी ने लिखा—जब भगवान श्री राघवेन्द्र वन की यात्रा से लौट करके आये, तो आज भी कोई व्यक्ति विदेश से लौटता है तो लोग उसके संस्मरण पूछते है; कि वे किन-किन बड़े व्यक्तियों से मिले, कौन-कौन से बड़े स्थान देखे, क्या-क्या अनुभव हुए ? श्री राम से भी बहुधा उनके मित्र पूछते थे कि चौदह वर्षों तक आप वन मे रहे, आप ये बताइए कि इन चौदह वर्षों में सबसे अधिक याद किसकी आती है, किन घटनाओं की याद आती है ? तो भगवान श्री राघवेन्द्र कह सकते थे मै महर्षि वालमीकि से मिला, महर्षि अगस्त्य से मिला, महर्षि भारद्वाज से मिला ! भगवान श्री राम कह सकते थे मैने रावण और कुम्भ-करण का वध किया, मैंने सारे संसार से निशाचरों को मिटा दिया। पर गोस्वामी जी कहते है भगवान श्री राघवेन्द्र, अपने ससमरणों में इनकी स्मृति नही करते। वस दो ही बातें, भगवान राम अपने मित्रों से सुनाते है। भगवान श्री राघवेन्द्र ने कहा कि, इस यात्रा में, मुझे जो मित्र और वन्धु मिले वही, मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि है। तो महाराज ! आपके मित्र कौन है ? कोई बहुत बड़े व्यक्ति होगे, और आपके वन्धु कौन है ? तो 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी कहते हैं—भगवान राघवेन्द्र, मुनियो ने श्री राम की इतनी स्तुतियाँ कीं, इतनी प्रशंसा की, उसको तो भूल गये, उसकी तो चर्चा तक उन्होने नहीं की, वल्कि आप 'विनयपत्रिका' की पंक्ति में पावेगे, भगवान श्री राम चर्चा किसकी करते है ? वोले :—

सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।

लेकिन—" मीत कहे सुख मानत"

ा। भगवान श्री राघवेन्द्र को केवट लगा कि, आज तक मेरे

वरी से वोलने वाला कोई मित्र तो मिला ही नहीं ! इससे तो मैं विल्कुल वंचित था ! सख्य का अभाव था ! सचमुच लोग मुझे सिंहासन पर विठाकर न जाने कितना दूर वना करके स्तुति करते रहते है। भगवान श्री राघवेन्द्र को केवट के मुख से निकला हुआ 'मित्र' शब्द वड़ा प्रिय लगता है। और भगवान राम अपने अयोध्या के मित्रों को सुनाते हैं कि आप लोग तो मेरे मित्र है ही, लेकिन वन में मुझे एक ऐसा अनोखा मित्र मिला कि जितनी भी प्रशंसा की जाय, कम है। और महाराज ! आपकी वंधुता किससे है ? तो गोस्वामी जी कहते है :—

'सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।'

मुनियो ने स्तुति की तो संकोच से सिर झुका लिया, प्रशंसा सुन करके सिर झुक गया। लेकिन :—

"केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई।"

वोले वन्दर मेरे वंधु है, और केवट मेरा मित्र है। और भगवान श्री राघवेन्द्र की सवसे वडी सफलता यही है, उनकी करुणा की सवसे वड़ी सार्थकता यही है कि वे केवट के अंतःकरण में मित्रता की वृत्ति उत्पन्न कर पाये, और वन्दरो के अंतःकरण में वन्धुत्त्व की भावना भर पाये।

केवट का व्यवहार वड़ा विचित्र था, पर यह तो वाणी का व्यवहार था। लेकिन, वन्दरों का व्यवहार तो प्रत्यक्ष रूप से भी वड़ा अटपटा था। गोस्वामीजी ने वर्णन किया इनके व्यवहार का—जव कभी भगवान राम अपने समीप आए हुए वन्दरों से वैठने के लिए कहते थे तो ये लोग कहाँ वैठते थे ?

"प्रभु तरुतर कपि डार पर"

सव वृक्ष की डालियों पर जाकर भगवान राम के सिर पर बैठ जाते थे ! श्री लक्ष्मण जी को केवट के प्रसङ्ग में भी लगता है ये तो उप-

युक्त भाषा नहीं है। भला आपको ऐसी भाषा का प्रयोग करना चाहिये ? और जब बन्दरों ने भी इस प्रकार व्यवहार किया तो उन्होंने कहा, महाराज ! कम से कम इनको बैठना तो सिखा देना चाहिए कि कहाँ बैठना चाहिये, कैसे बैठना चाहिये ? तो भगवान श्री राम ने कहा कि लक्ष्मण ! मेरे अवतार की सार्थकता तो अभी पूरी हुई है। क्या ? देखें एक बड़ा गंभीर सूत्र है और जिसका आधुनिक मनो-विज्ञान से बड़ा गम्भीर सम्बन्ध है। आधुनिक मनोविज्ञान में मनो-ग्रंथियों का वर्णन किया गया है। मनो-ग्रन्थियों के सन्दर्भ में दो प्रकार के व्यक्ति बहुधा पाए जाते हैं। एक तो वे हैं कि जिनके मन में अपनी श्रेष्ठता की ग्रन्थि है, अपने बड़प्पन की गाँठ जिन्होंने कस करके बाँध ली है। और दूसरे कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन बेचारों के मन में अपनी हीनता की गाँठ बँधी हुई है। तो यह श्रेष्ठता का अभिमान और हीनता की जो वृत्ति है इससे अधिकांश लोग ग्रस्त हैं। या तो कुछ व्यक्ति अपने को बहुत बड़ा मान करके अपने को दुःखी करते रहते हैं। बड़प्पन का अभिमान दूसरे को दुःख देता है और हीनता की जो वृत्ति है वह अपने को ही दुःख देती है। तो आप भगवान श्री राघवेन्द्र या आधुनिक सन्दर्भ में भी देखें कि, सन्तुलित व्यक्ति कौन है ? समाज में किस व्यक्ति को हम यह मानें कि यह व्यक्ति सन्तुलित है ? तो इसका उत्तर यही है कि न तो जिसमें बड़प्पन की ग्रन्थि हो, और न ही हीनता की ग्रन्थि हो। जो इन दोनों मनोविकारों से मुक्त हो। और अगर इसको उलट करके कहें तो यों कह सकते है कि जो न तो दूसरों को दुःख दे और न तो स्वयं दुःखी हो। तो भगवान श्री राघवेन्द्र क्या करते है ? गोस्वामी जी कहते है कि भगवान श्री राम ने अपने चरित्र के द्वारा इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों की चिकित्सा की। क्योंकि श्रेष्ठता का अत्यधिक अभिमान भी एक प्रकार का रोग है। इसे यों कह लें जैसे, भई ! भोजन जो है वह स्वस्थ व्यक्ति का लक्षण है या अस्वस्थ व्यक्ति का ? तो इसका भी उत्तर यही है कि यदि व्यक्ति को अत्यधिक भूख लगे तो यह भी रोग है, और बिल्कुल मंदाग्नि हो जाय, भूख ही न लगे, तो भी रोग है। तो बड़प्पन का अतिरेक, जो अभिमान की सृष्टि करता है, वह भी रोग है, और लघुता की वृत्ति, जो व्यक्ति के मन में हीनता

भर देती है, वह भी रोग है। तो सच्चे अर्थों में चिकित्सा करने वाला वह है जो समाज में सन्तुलन उत्पन्न करे और इन दोनो रोगों से व्यक्ति को मुक्त करके स्वस्थ व्यक्ति का स्वरूप दे। तो ये जहाँ पर स्वस्थ व्यक्ति है, वही रामराज्य है। तो भगवान श्री राघवेन्द्र की एक विलक्षण शैली है। गोस्वामीजी ने 'विनयपत्रिका' मे कहा, महाराज! आप दो काम करते है, क्या? बोले :—

"बड़े की बड़ाई दूर कर छोटे की छोटाई"

"आप जो बड़ा है, उस व्यक्ति के मन से वडप्पन का अभिमान मिटा देते है, और जो छोटा व्यक्ति है, उसके मन से छोटेपन की लघुता मिटा देते है। आप दोनो को मिटा करके व्यक्ति को पूर्ण संतुलित बना देते है।" और सचमुच भगवान श्री राघवेन्द्र का व्यवहार यही है।

इन्द्र से रथ न माँगना और केवट से नाव माँगना, इन दोनों विरोधी व्यवहारों पर आप ध्यान दीजिए! रावण से युद्ध करना है, रावण के पास दिव्य रथ है। भगवान राम को युद्ध करने के लिये व्यावहारिक दृष्टि से रथ की आवश्यकता है। भगवान श्री राम यदि एक दिन इन्द्र को संदेश भेज दें तो इन्द्र प्रसन्न हो करके भगवान राम के लिए रथ भेज दे, पर श्री राम इन्द्र से रथ नही मँगाते। और वही श्री राम गङ्गा के किनारे खडे हो करके केवट से नाव माँगते है। इन्द्र और केवट दोनो मे क्या अन्तर है? यही—इन्द्र के मन मे अपनी श्रेष्ठता का अभिमान है और केवट बेचारा जो है वह समाज की दृष्टि से अत्यन्त दीन-हीन और तुच्छ है। भगवान श्री राघवेन्द्र जब इन्द्र से रथ नही मंगाते है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वे इन्द्र के शत्रु है। आगे चल करके वे इन्द्र का रथ भी स्वीकार करते है। असन्तुलित अगर भगवान राम होते, तो दूसरे दिन इन्द्र का रथ आने पर वापस भेज देते, और कह देते जाओ, जाओ, तुम्हारे रथ के बिना भी मेरा काम चल जाएगा! मै तुम्हारे रथ पर नही बैठूँगा! दूसरे दिन इन्द्र ने रथ भेजा तो भगवान श्री राघवेन्द्र ने स्वीकार किया और उसी रथ पर बैठ करके भगवान राम लड़े।

लेकिन इन्द्र से उन्होंने रथ नही मँगाया। रथ की याचना नही की। लेकिन, गङ्गा के किनारे, इन्द्र से रथ न माँगने वाले भगवान राम, केवट से नाव माँगते है। इन्द्र को वे यह बता देना चाहते है कि तुम्हारे रथ के बिना भी सारा काम चलेगा। कोई अन्तर नहीं आवेगा। वो तो एक दिन मे इन्द्र का जो रोग था, वह दूर हो गया। इन्द्र की जो सारी भ्रान्ति थी जब भगवान श्री राम एक दिन बिना रथ के लड़े और अगणित राक्षसों का संहार उन्होने किया, तो इन्द्र ने यह देखकर समझ लिया कि ये तो बिना रथ के भी जीत ही जायेंगे, इसलिए रथ भेज ही देना ठीक है। क्योकि, कम से कम कहने के लिये इतिहास में यह हो जायेगा कि इन्द्र का रथ भी भगवान राम के काम आया। तो इन्द्र जो अपने अन्तःकरण में अपने बड़प्पन का अभिमान पाले हुये था, उसे भगवान श्री राम ने मिटा दिया। और उसके बड़प्पन का सदुपयोग किया। उसकी सार्थकता प्रगट की। और इसका अभिप्राय है कि रथ तो सद्गुणों का प्रतीक है। और सद्गुणो की अपेक्षा संसार के व्यक्तियों को तो है, परन्तु ईश्वर को नहीं। फिर भी, यदि कोई अपने सद्गुणों को धन्य बनाना चाहता है तो वह अपने सद्गुणों को भगवान के प्रति अर्पित करे। तो यह इन्द्र का रथ 'धर्मरथ' है, सद्गुणों का रथ है। भगवान श्री राघवेन्द्र के जीवन में किसी बहिरङ्ग रथ की आवश्यकता नही है, पर यदि इन्द्र अपने सद्गुणों और सत्कर्मो को धन्य बनाना चाहता है तो रथ भेज करके अपने को धन्य बनावे। और इस तरह से भगवान श्री राघवेन्द्र ने इन्द्र के प्रति व्यवहार किया।

यह भगवान राम के चरित्र में बड़ा विचित्र विरोधाभास है। साधारणतया हम और आप जो व्यवहार करेंगे उसमें नियम यह होगा कि कोई बड़ा व्यक्ति होगा तो उससे मांगेंगे, और कोई छोटा व्यक्ति होगा तो उसे देंगे पर भगवान राम के सामने जब कोई बड़ा व्यक्ति आता है तो वे माँगते नही, बल्कि उसी से कहते है कि जो माँगना हो माँग लो। जिस समय मनु जैसा चक्रवर्ती सम्राट तपस्या करने लगा, जिसमे राज्य, धर्म और तपस्या की अतुलित सामर्थ्य है, जो इतना बड़ा है, उन मनु के सामने भगवान आये और मनु से भगवान ने क्या कहा?

"माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि।"

"तुम्हे जो माँगना हो माँग लो।" जब कोई बड़ा व्यक्ति आ जाय तो भगवान कहते हैं जो माँगना हो माँगो और जव कोई छोटा व्यक्ति आ जाय, तो भगवान कहते है, मुझको यह चाहिए, मुझको यह दे दो! आप देखिए, माँगने के लिए उन्होने किनको चुना? या तो केवट को चुना या शवरी को चुना। दोनों ही अत्यन्त दीन-हीन है। या तो केवट से कहा कि भई! विना तुम्हारी नाव के कार्य नही चलेगा, या फिर शवरी से कहा, तुम्हारे फल के विना तो मेरा पेट कभी भरा ही नहीं! गोस्वामी जी यही कहते है कि, भगवान राम को अपने चौदह वर्षो की वन यात्रा में चार नाम ही विशेष रूप से याद रहे। केवट का या बन्दरों का, तथा दो नाम और याद रहे। मित्र पूछते थे कि आप को यात्रा मे और व्यक्ति भी मिले होंगे? तो गोस्वामी लिखते हैं—

मिलि मुनिवृन्द चलत दण्डकबन सो चर्चहुं न चलाई। और
बारहि बार गीध शबरी की बरनत प्रीति सुहाई॥

या तो गीध का नाम या शवरी का नाम। तो केवट से और शबरी से माँगना और मनु को देना। इसका अर्थ क्या है? मनु से जब कहते हैं कि माँगों, तो मानों मनु को बता देना चाहते है कि यह न समझना कि तुम मुझे कुछ दे सकते हो? तुम मुझसे जो चाहो पा सकते हो। वड़प्पन का अगर कोई सात्विक अभिमान् भी है मनु के मन में, तो उसे मिटा देते है। और जब केवट से माँगते है तो मानों केवट को वताते है कि तुम छोटे नही हो, समाज ने चाहे तुमको जितना तुच्छ समझ लिया हो, पर वास्तव मे तो तुम्हारा वहुत अधिक महत्व है। तुम्हारे बिनातो मेरा काम ही नही चलेगा। तुम्हारे विना तो मेरी आवश्यकता ही पूरी नही होगी। किसी ने पूछ दिया भगवान से कि, "आप ऐसे व्यक्तियों से इतना स्नेह क्यो करते है?" तो भगवान ने कहा,—"इसमें भी मेरा ही स्वार्थ है।" आपका क्या स्वार्थ है? बोले—"सारा मेरा यश जो है, वह तो इन्ही लोगों की कृपा से है! बड़े लोगों से नही। क्योकि, जव मै दीन पर कृपा करूँगा तो कृपा, कृपा दिखाई देगी। बड़े पर कृपा

करूँ, तो वह कृपा नहीं प्रतीत होगी, वह तो उनके द्वारा किये गए कर्मों का परिणाम दिखाई देगा ।" तो इस प्रकार भगवान राम केवट के मन में जो दीनता थी, केवट को समाज ने जो अत्यन्त दीन-हीन बना दिया था, अत्यन्त तुच्छ बना दिया था, उस भावना को मिटा देते है। व्यक्ति में हीनता की वृत्ति का एक और मनोवैज्ञानिक परिणाम यह होता है कि जब हीनता की ग्रन्थि किसी में आती है तो लोग उसको तुच्छ कह करके, दीन कह करके, बुरा कह कर के, और भी छोटा बनाने की चेष्टा करते है। परिणाम यह होता है कि उस बेचारे के मन मे जितना ही छोटा कहा जाय, लघुता की भावना उतनी ही भरती जाती है। पर भगवान राम उस हीनता की भावना को ही मिटा देते है। यही श्रीराम की करुणा है। उनको लगता है कि केवट से बढ़कर के समाज में दयनीय स्थिति किसी की नही है। इसलिए उसकी हीनता की वृत्ति को मिटाकर भगवान राम इतने अधिक आनन्द का अनुभव करते है, जैसे किसी चिकित्सक के द्वारा, रोगी के स्वस्थ हो जाने पर आनन्द की अनुभूति होती है।

भगवान राम केवट को यह बताना चाहते थे कि तुमने अपने को तुच्छ समझ लिया, समाज ने तुमको तुच्छ समझ लिया होगा, पर नही, नही, मैं बताता हूं कि तुम्हारे पास तो इतनी बड़ी वस्तु है कि, जिस को माँगने के लिए आज मै खड़ा हुआ हूं! और उसकी चरम परिणति तब हुई जब गुरु वशिष्ठ से निषाद को आते देखकर श्री भरत ने पूछ दिया, ये कौन है ? तो गुरुजी के मुंह से शब्द निकला, इनका नाम गुह है, ये जाति के निषाद है, पर अगले वाक्य में गुरुजी को स्वीकार करना पड़ा—बोले भई ! इन दोनों के साथ यह भी मैं बता दूं कि, ये तुम्हारे राम के मित्र हैं। तो श्री भरत जाति तो भूल गये, नाम भी भूल गये और किया क्या ?—

राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा।
चले उतरि उमगत अनुरागा ॥

रथ का परित्याग करके निषादराज से मिलने के लिये दौड़े। निषाद-राज को कस करके हृदय से लगा लिया। और हृदय से लगा लेने के

पश्चात् फिर पूछा, कहिए, आप कुशल से तो है? निषाद को हँसी आ गई। वोले, महाराज! अब भी कुशल पूछना बाकी है? अरे! जिस को देखकर के अयोध्या का सम्राट रथ छोड़ दे वह कितना वडा होगा? आज आपने सचमुच मुझे, जो वड़प्पन प्रभु ने दिया था, उस को प्रमाणित कर दिया। निषाद ने पुराने दिनों को याद किया, वोला महाराज! मै सदा से ऐसा थोड़ी था, मेरी स्थिति समाज में एक दिन ऐसी थी कि मुझे चार ही रूपो मे समाज देखता था। किन रूपो मे? बोले—

कपटी कायर कुमति कुजाती।
लोक बेद बाहेर सब भाँती॥

लोक ने भी मेरी अवहेलना की और वेदो में भी हमे तुच्छ कहा गया। वेदो मे भी जहा पर वर्णन किया गया तो यह माना गया कि वर्ण भी व्यक्ति के कर्मों का परिणाम है। इसलिए निषाद होना इसके किसी असद् कर्म का परिणाम है। और समाज ने तुच्छ कहकर के निन्दा की ही, कि अरे! वड़ा कपटी है, कायर है, कुजाति है, नीची जाति का है, मंदबुद्धि है। लेकिन, निषाद कहते है, महाराज! ये वाते पुराने दिनो की थी। अब तो यह स्थिति है कि :—

कपटी कायर कुमति कुजाती।
लोक बेद बाहेर सब भाँती॥ लेकिन—
राम कीन्ह आपन जब हीं ते।
भयउँ भुवन भूषण तब हीं ते॥

निषाद के मुह से जव यह शब्द निकला, भरत जी गद्‌गद् हो गये। निषाद कहते है, मै भुवन भूपण हूं। और इसका अभिप्राय क्या? स्वयं अपने मुंह से जो अपने आपको दीन-हीन और तुच्छ समझने वाला था, वही कहता है महाराज! इस समय मैं अपने आप को श्रेष्ठ न कहूं, भुवन भूषण न मानूं, तो यह हमारे प्रभु की करुणा का अनादर है। प्रभु ने मुझे इतना वडा वना दिया, और वड़ा वना देने के पश्चात्

आपने भी अपने व्यवहार के द्वारा मेरे बड़प्पन को प्रमाणित कर दिया। और यह परिवर्तन श्री राम की करुणा के द्वारा, श्री राम के स्नेह के द्वारा, मेरे जीवन में घटित हुआ है।

सर्वत्र आप भगवान राम के चरित्र की यह विशेषता पावेंगे। भगवान राम यदि चाहते तो लङ्का पर विजय प्राप्त करने के लिए अयोध्या से सेना बुला सकते थे, पर अयोध्या की सेना न बुलाकर के वन्दरो के द्वारा जो लड़ाई भगवान राम ने की; उसका अभिप्राय था कि, पशु और तुच्छ से तुच्छ व्यक्तियो के मन से हीनता की वृत्ति को, दीनता को, मिटा देना। भगवान राम के बड़प्पन की विशेषता क्या है ? जो कुश्ती मे सबको पटक दे, वह भी बलवत्ता का एक लक्षण है, लेकिन बलवत्ता का एक दूसरा लक्षण वह है कि, जिसके स्पर्श कर देने से निर्बल व्यक्ति भी बलवान हो जाय। जो एक बलवान को मिटाकर के अपनी बलवत्ता सिद्ध करे, वह तो साधारण बलवान है, पर जो दूसरे निर्बल को शक्ति प्रदान करे, वही सच्चा बलवान है। भगवान राम ने वन्दरो को इतनी शक्ति दी, विभीषण को इतनी शक्ति दी कि, वे रावण से बराबर युद्ध करते है। भगवान श्री राम ने प्रत्येक के अन्त:करण में, प्रत्येक के हृदय मे, इस भावना की सृष्टि कर दी, इस भावना को भर दिया, कि नही ! नही ! आप लोग तुच्छ नही है। आप लोग इतने शक्तिशाली हैं कि आप लोग लङ्का को पराजित कर सकते है। और इतना ही नही, भगवान श्री राघवेन्द्र युद्ध समाप्त होने के बाद वन्दरो से कहते हैं- "तुम्हरे बल मैं रावण मार्यो" मित्रों ! लोगो को शायद यह भ्रम हो रहा हो कि मैने रावण को मारा है, पर रावण वस्तुतः तुम्हारे बल से मारा गया। बेचारे वन्दर तो संकोच से गड़ गए, क्योंकि वे कभी-कभी लड़ाई से भाग खड़े होते थे। लेकिन भगवान श्री राघवेन्द्र ने कहा नही, नही, मैं जानता हूं आप लोग कायरता के कारण नही भागते थे, आप लोगों का मुझसे इतना स्नेह हैं कि जब कोई राक्षस लड़ने आता था तो पहले आप लड़कर उसको थका देते थे, और बाद में जब उसे मारने का अवसर आता था तो मुझे कीर्ति देने के लिए आगे बढ़ा देते थे। यह तो आप लोगो का स्नेह है। वस्तुत, इसमें मेरी कोई विशेषता नही। भगवान श्री राघवेन्द्र स्पष्ट शब्दों मे कहते है :—

तुम्हरे बल मै रावनु मार्यो।
तिलक बिभीषन कहुँ पुनि सार्यो ।।

वन्दरो के मुख से निकला :—

"सुनि प्रभु बचन लाज हम मरहीं।
मसक कहूँ खगपति हित करहीं ।।"

पर भगवान श्री राघवेन्द्र कहते है कि ना ! ना ! और ये शब्द भगवान अकेले में नही कहते। कभी कभी लोग अकेले में धन्यवाद दे देते है, पर जव सार्वजनिक वात आती है, जहाँ दूसरा हो, वहाँ स्वयं ही श्रेय लेना चाहते है। पर भगवान राम जव अयोध्या में गये तो एक ओर गुरु वशिष्ठ और दूसरी ओर वन्दर—यही भगवान श्री राघवेन्द्र का संतुलन है। गुरु वशिष्ठ समाज के सबसे उच्च और बेचारे बन्दर मनुष्य से भी नीचे पशु, और दोनो के वीच में भगवान राम खड़े है। भगवान राम दोनों को महत्व देते है। गुरु वशिष्ठ के चरणो में गिर पड़े, साष्टांग प्रणाम किया, और वन्दरों से कह दिया—

गुरु बसिष्ठ कुल पूज्य हमारे।
इन्ह की कृपा दनुज रन मारे ।।

पर गुरु जी ने आश्चर्य से वन्दरो की ओर देखा ! ये कौन है ?

वोले :—

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भए समर सागर कहँ बेरे ।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे।
भरतहुँ ते मोहि अधिक पिआरे ।।

"महाराज ! ये वन्दर जो है मेरे मित्र है। मेरे लिए इन्होने अपनी जान की परवाह नहीं की और मुझे लङ्का का युद्ध जिताया।" तो एक ओर भगवान राम ने कहा—गुरुजी आपकी कृपा से राक्षस मारे गये, फिर कह दिया वन्दरो के द्वारा मारे गये, तो सुनने वाले ने भगवान

राम से पूछ दिया कि कभी तो आप कहते हैं कि बन्दरों के बल से राक्षस मारे गये, और कहीं आप कहते है कि गुरुजी की कृपा से मारे गये, तो इन दोनों में सत्य क्या है ? गुरुजी की कृपा से आप जीते या बन्दरों की सहायता से आप जीते ? तो भगवान राम ने तुरन्त शब्द बड़ा सुन्दर चुना। उन्होने कहा "भाई ! अगर किसी समुद्र को पार करना हो तो दो वस्तुएँ चाहिएँ, क्या ? "एक तो जहाज चाहिए और दूसरा जहाज को चलाने वाला मल्लाह भी चाहिए।" तो भगवान श्री राघवेन्द्र ने कहा—

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भए समर सागर कहँ बेरे॥

ये तो बन गये युद्ध क्षेत्र में जहाज और गुरुजी बन गये मल्लाह—

"करन धार सदगुरु दृढ़ नावा।"

और दोनों ने पार उतार दिया। इस प्रकार भगवान राम दोंनों को ही श्रेय देते है। तो जो गुरु वशिष्ठ और बन्दरों में बँटवारा कर दे श्रेय का, और दोनो को समान रूप से सम्मान देकर यह कह दे कि मेरा कुछ नही है, आप लोगों की ही कृपा है, तो इसका अभिप्राय है कि सच्चे अर्थो में भगवान राम प्रत्येक के अन्त.करण से दीनता की, हीनता की भावना मिटा देते हैं। भगवान राम प्रत्येक व्यक्ति को महत्व देते है।

केवट ने आगे चलकर के उनसे कहा प्रभु !

"मिटे दोष दुख दारिद दावा"

"मेरा दोष मिट गया, दुःख मिट गया, दरिद्रता मिट गयी।" तो दोष कैसे मिट गया ? केवट ने कहा—"मुझे तो लोग अपवित्र समझकर डर के मारे छूते नही थे, लेकिन आपने तो मुझे एक नया स्वरूप दे दिया।" गोस्वामी जी ने इसको भी बड़े मधुर भाव के रूप में प्रस्तुत किया। भगवान राम उतावले हो रहे है :—

बेगि आनु जल पाय पखारू ।
होत बिलंबु उतारहि पारू ॥

जल्दी से जल ले आओ और मुझे पार उतार दो! पर केवट कहता है, न! महाराज! इतनी जल्दी मत कीजिए! क्यो? वोला—"आप तो मर्यादा पुरुषोत्तम है और यह बताइए कि जब बहुत से यात्री हो तो जो पहिले आया हो, उसे पहिले पार करना चाहिए या जो बाद मे आया हो, उसे पार करना चाहिए?" भगवान ने कहा "भाई! पहिले वाले को पहिले पार करना चाहिए, बाद वाले को बाद में।" तो बोला—"प्रभु! आप भी देर से आये। अब मै पहले वालो को पार उतारूँगा फिर आपको पार उतारूँगा।" चारो ओर लोगो ने आश्चर्य से देखा कि उतरने वाला तो कोई नही है। पर उसने नियम का पालन किया। कठौते मे जल ले आ करके भगवान राम का चरण धोया, चरण धोकर के पिया। गोस्वामी जी तुरन्त मीठी भाषा में लिखते है :—

"पद पखारि जलुपान करि आपु सहित परिवार।"

और—"**पितर पारु करि प्रभुहि पुनि**" पहिले पितरो को पार किया। बोला "महाराज! ये बहुत दिनो से खडे हुए थे। शास्त्रो ने यह कहा कि गगा मे स्नान करने से पाप नष्ट हो जाते है, पर जो तीर्थ में जाकर के पाप करे, उसके वज्र लेख हो जाते है। महाराज! हमारे पुरखे तो गगा मे ही मछली मार करके पाप करते रहे, इसलिए गंगा भी इनको तार नही पायी। ये बेचारे तो खडे ही है, इसलिए मै पहिले इनको पार उतारे देता हूं, इसके पश्चात् आपको पार करूँगा।" और केवट ने कहा "महाराज! अब भी क्या मेरे जीवन मे कोई दोष रह गया? अपने को ही पार उतारना कठिन है, पर जो पितरो को पार उतार दे, और पितरो को पार उतारने के साथ-साथ जो आपको (साक्षात ईश्वर) को पार उतार दे, इसके पश्चात् भी अगर कोई उसमे दोष की कल्पना करे उससे बड़ा अविवेक का कार्य नही हो सकता। तो इस प्रकार मुझमे दोष नही है।" और—"महाराज! दरिद्रता इसलिये नही है कि स्वयं सारे संसार को देने वाला मुझसे

माँग रहा है।" तो इस प्रकार महाराज न तो मुझमें दोष रह गया, और न ही दरिद्रता रह गयी।

यहाँ केवट का एक और अंतरंग उद्देश्य भी मैं बता दूँ, केवट चाहता तो भगवान श्री राम के चरण, प्रार्थना की भाषा मे भी पा सकता था। केवट यदि चाहता तो बिना प्रार्थना किये भगवान राम के चरणो को धोने के लिए जल ले आकर भी चरण पा सकता था। पर इस अटपटी भाषा के पीछे केवट का एक बड़ा गहरा उद्देश्य था। और केवट, सचमुच अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हुआ। तो केवट का उद्देश्य क्या था? केवट ने देखा—और यदि आप भी इस प्रसङ्ग से मिलाकर के देखेगे तो आपके हृदय में भी यह बात आवेगी कि भगवान राम जब गंगा के किनारे आकर के खड़े हुए तो उनकी मनः-स्थिति कैसी थी? सुमन्त्र ने भगवान श्रीराम से, महाराज श्री दशरथ की आज्ञा सुनाई, प्रार्थना सुनाई और बालक की तरह रोने लगे और श्री राम से ये कहा कि, आप अयोध्या लौट चलिए। पर भगवान श्री राम ने सुमन्त्र जी की बात नही स्वीकार की। सुमन्त्र जी ने कहा कि फिर मुझे साथ में लेते चलिए :—

"करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोई।"

भगवान श्रीराम स्वभव से ही बड़ करुणामय है। भगवान श्री राघवेन्द्र सुमन्त्र जी की यह दशा देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। राज्य छूट जाने से भगवान श्री राम को रंचमात्र दुःख नही हुआ, लेकिन सुमन्त्र जी की यह दशा देखकर के श्री राम की आँखों में आँसू आ गया। सुमन्त्र जी को भगवान श्री राम यही से लौटा देते है। यह ध्यान रखिएगा, कि सुमन्त्र जी वटवृक्ष के नीचे से ही लौटा दिये गए। गंगा के किनारे भगवान श्री राघवेन्द्र, सुमन्त्र जी को साथ लेकर के नही गये। यद्यपि यह बात बड़ी विचित्र लगती है। इसीलिए आगे चलकर के सुमन्त्रजी के सामने बड़ा संकट आया। जब महाराज ने पूछा कि राम कैसे बन गये? तो सुमन्त्र जी यह साहस ही नही एकत्र कर पाए कि वे यह कहे कि मै गगा के किनारे गया ही नही। आगे घटना मैने नही देखी। सुमन्त्र जी ने गंगा के किनारे का वर्णन केवल कल्पना से ही महाराज

दशरथ को सुनाया। वहाँ जब आप पढ़ेंगे और केवट का प्रसङ्ग पढ़ेंगे तो आपको विचित्र विरोधाभास लगेगा। सुमन्त्र जी यह कहते हैं महाराज दशरथ से कि, महाराज ! श्री राम, लक्ष्मण और सीता गंगा के किनारे जाकर के खड़े हुए और—

"राम सखाँ तब नाव मँगाई"

"तब राम के मित्र ने राम के लिए नाव मँगाई।" अरे ! नाव मँगाना तब कहाँ ! यहाँ तो नाव माँगने पर नाही हो रही है ! सुमन्त्रजी कहे जा रहे है नाव मँगाया, सुमन्त्र जी के मन में यह कल्पना हुई कि इस को छोडकर के तो कोई और बात हो ही नही सकती। क्योंकि, जब प्रभु गगा के किनारे खड़े हुए होंगे तो गंगा के किनारे खड़े होने पर केवट तुरन्त नाव ले आया होगा। और कहा होगा बैठिये ! तो एक काल्पनिक वर्णन सुना रहे है। और इसके साथ कहने लगे—

"राम सखाँ तब नाव मँगाई।
प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥"

एक काल्पनिक वर्णन, वोले—"भगवान श्रीराम ने पहले जनकनन्दिनी सीता को नाव में चढ़ाया, वाद में लक्ष्मण को चढ़ाया और सब को चढ़ाकर भगवान राम स्वयं नाव पर चढ़ गये।" इसके वाद—

"तेहि अवसर रघुबर रुख पाई।
केवट पारहि नाव चलाई॥"

"भगवान राम का रुख पाकर के केवट नाव खेकर ले गया।" कितना आश्चर्य होता है कि यह सब जितना वर्णन है, सत्य से विल्कुल दूर है ! वस, सुमन्त्र जी का संकट यही था। वे यह कहने का साहस भी नही एकत्र कर पा रहे है कि मैं गंगा के किनारे तक नही गया और भगवान राम ने उनसे ऐसा वाक्य कह दिया कि गंगा के किनारे तक जाने का साहस भी एकत्र नही कर पाये। भगवान श्री राघवेन्द्र, सुमन्त्र को गंगा के किनारे जाने क्यों नही देना चाहते, इसके पीछे भगवान राम

का तात्पर्य क्या था ? भगवान श्री राघवेन्द्र भविष्य से परिचित है। भगवान श्रीराम केवट से जिस तरह के वार्तालाप की आशा कर रहे है, उनको लगा कि, अयोध्या के प्रधानमंत्री खड़े रहेंगे तो शायद बेचारे का साहस ही छूट जाय। इससे इनको तो किसी तरह, यही से रवाना करो। इनको तो किसी तरह भी ले जाने की आवश्यकता नहीं है। अयोध्या राज्य के प्रधानमंत्री को, बस सीमा पर से ही लौटा देना ठीक है। और तर्क इतना बढ़िया किया कि सुमन्त्र जी को मानना पड़ा। भगवान राम ने कहा, आप मेरे साथ गंगा के किनारे चलें, तो यह ठीक नही। यही से लौट जाइये। आश्चर्य से सुमन्त्रजी ने देखा ! क्यों ? तो उन्होंने कहा—"पिताजी ने आपको किस लिए भेजा था?" बोले—"आपको लौटा लाने के लिए।" तो "आप गंगा के किनारे जायेंगे तो फिर सिद्ध हो जायगा कि आप लाने के लिए नहीं, बल्कि विदा करने के लिए आये थे। और यही से लौट जायेंगे तो कह देगे कि मुझे उन्होंने विदा किया है। मैने विदा नही किया है। इसलिए अच्छा यही रहेगा कि आप न जायँ।" इसलिए गोस्वामी जी कहते हैं—"बरबस राम" किसी तरह से चेष्टा करके भगवान श्रीराम सुमन्त्र को लौटा देते हैं। और जब भगवान राम चलने लगे तो घोड़ों की जो दशा हुई—श्री राम का प्रेम तो मानव जाति के लिए ही नही है, पशु-पक्षी, जड़-चेतन, सब के प्रति प्रेम है। घोड़ों के प्रति प्रेम का बड़ा हृदयग्राही वर्णन गोस्वामी जी ने 'गीतावली' रामायण में किया है। 'रामचरित मानस' में भी गोस्वामी जी ने लिखा है कि घोड़ों ने हिनहिनाना शुरू किया, उनकी आँखो में आँसू आ गये, तृण छोड़ दिया :—

नहि तृन चरहिं, न पिअहिं जलु, मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि॥

घोड़ों को जब यह लगा कि श्री राम हमें छोड़ कर के जा रहे है तो घोड़ों के अन्तःकरण में इतनी व्याकुलता हुई कि, वे भी निराशा से रुदन करते हुए श्री राम की ओर देखने लगे। इन घोड़ों का, राम के प्रति प्रेम का वर्णन कौशल्या अम्बा ने एक पथिक से किया, पथिक जा

रहा था चित्रकूट की ओर। कौशल्या अम्बा चित्रकूट की ओर देखा करती है। एक पथिक को जाते देखा तो उसको बुलाया और पथिक से कहा कि "पथिक ! तुम मेरा एक सन्देश जाकर के राम को सुनाना" क्या ? कि, "एक बार राम अयोध्या लौट आवें।" पथिक ने कहा, "ठीक है माँ ! मैं कह दूंगा, आपने बड़ी याद की है, इसलिए आप अयोध्या लौट चले।" तो माँ ने कहा, "बिल्कुल नहीं, मेरा तो नाम ही न लेना। मुझे तो बुलाने का अधिकार ही नही है।" क्यों ? तो कहा—"यदि सचमुच मेरे हृदय में प्रेम होता तो मै भी महाराज की तरह प्राण त्याग देती ! मेरा हृदय तो इतना कठोर है कि मैं जीवित हूं। तुम मेरे लिए उनसे लौटने का अनुरोध मत करना।" तब किसके लिए श्रीराम लौटे ? तो कौशल्या अम्बा पथिक से कहती है कि, "जा कर के कह देना"—

"राघौ ! एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने, बहुरौ बनहिं सिधावौ॥"

"अपने घोड़ो के लिए चले आओ। अपने घोड़ों को एक बार देख लेना और देखने के बाद भी अगर लौटने का साहस हो तो लौट जाना। पर मुझे विश्वास है कि तुम अगर एक बार इन घोड़ो की दशा देख लोगे, तो शायद फिर लौट नही पाओगे।" फिर याद दिलाती है, "राम ! क्या तुम भूल गए इन घोड़ो को ?" "जे पय प्याइ" जिन घोड़ो को स्वय तुमने अपने हाथ से दूध पिलाया ! जिनके शरीर पर तुमने प्रेम से हाथ फेरा !

जे पय प्याइ, पोखि कर-पंकज, बार बार चुचुकारे।
क्यौं जीवहिं, मेरे राम लाड़िले ! ते अब निपट बिसारे॥

"जिन घोडो से तुमने इतना प्रेम किया, इतना अपनत्व किया, नित्य अपने स्नेह से लालित किया, उन्हे तुम आज भूल गये ! बताओ वे घोड़े कैसे जीवित रहे ! पथिक मै जानती हूं कि मेरी बात को सुन कर उनको थोडा सा अविश्वास होगा और वे कहेगे, नही ! नही ! मैं नही मानता, भरत तो मेरी वस्तुओ से बड़ा प्रेम करता है, ऐसा हो

ही नही सकता कि जिन घोडो से मैं इतना प्यार करता था, भरत उनमे प्यार करता ही न हो! भरत जरूर प्यार करते होगे घोड़ों को!" तो कौशल्या अम्बा ने कहा—"पथिक ! उनसे कह देना कि श्री राम ने जो समझा है, वह बिल्कुल ठीक है । राम के द्वारा घोडों की जितनी सेवा होती थी, भरतजी के द्वारा उससे सौ गुनी सेवा होती है :—

भरत सौगुनी सार करत हैं, अति प्रिय जान तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे, मनहु कमल-हिम मारे ।।

पर दिन-दिन वे और भी दुबले होते जा रहे है । क्यों ? क्योकि भरत को देख करके तो तुम्हारी याद भी सौगुनी बढ़ जाती है । जिस समय श्री भरत को देखते है तो श्री भरत का रङ्ग, श्री भरत का शील देख करके तुम्हारी इतनी स्मृति आती है कि बेचारों की वियोग व्यथा घटती नही है, बल्कि बढ जाती है ।"

सुनहुँ पथिक ! जो राम मिलहिं बन, कहियो मात-संदेसो ।
तुलसी मोहिं और सबहिनतें इन्हको बड़ो अँदेसो ।।

करुणा का एक ऐसा वातावरण, जहाँ घोड़ों से और सुमन्त्र जी से अलग होकर भगवान आ करके गङ्गा के किनारे खड़े हो गये, केवट सच्चे अर्थों में ऐसा सुन्दर मित्र निकला और उसने इतने समयानुकूल कार्य किया कि बाद में श्री सीता जी और लक्ष्मण जी दोनों ने अनुभव किया कि, केवट को हम लोग देर से समझ पाए । जब केवट ने ये बातें कही तो दोनों नहीं हँसे, पर आगे चल करके वर्णन आता है कि जब भगवान राम ने उतराई की चिन्ता की तो श्री सीता जी ने मुंदरी उतार कर दे दिया । और बाद मे जब केवट ने मुदरी भी लेना अस्वीकार कर दिया तो तीनो ने उससे मुदरी ले लेने का आग्रह किया । रामायण में ऐसे तो पात्र आपको मिलेगे, जिन्होने भगवान से माँगा और भगवान ने उन्हे दिया, पर भगवान ने किसी को इतना मनाया हो लेने के लिए और जिसने भगवान के इतना मनाने पर भी न लिया हों, ऐसा पात्र तो केवल केवट ही निकला । एक बात और रामायण में, भगवान ने भले ही किसी और

को मनाया भी हो, पर लक्ष्मण जी और सीता जी तो मनाने वाले नही है। पर तीनों ने अगर मिलकर किसी को मनाया, तो वह निषाद ही था। आगे चल करके वर्णन आता है—

"बहुत कीन्ह प्रभ लखन सिय नहिं कछु केवटु लेइ।"

लक्ष्मण जी भी कहते हैं, अच्छा भाई ! वैराग्य ले लो, ज्ञान ले लो, जो चाहो ले लो, श्री सीता जी भी कहती है भक्ति ले लो, पर केवट सब 'नाही' कर देता है। तो ये सब मना रहे है अपनी ओर से, इसका अभिप्राय क्या है ? केवट ने कितना महान कार्य किया ? भगवान श्री राम खड़े है गंगा के किनारे, भगवान श्री राम की आँखों में आँसू, व्याकुल हृदय, केवट को यह लगा कि प्रभु को पार उतार दूंगा तो पार उतारने से दुःख का वातावरण तो ज्यों का त्यों रहेगा। पर अगर इस करुणा के वातावरण को बदल कर यदि किसी प्रकार से प्रभु को हँसा दूँ, यह दुःख का वातावरण किसी प्रकार से दूर हो जाय, तो कितना अच्छा हो ? इतना गहरा भाव ले करके, सचमुच उसने भगवान के सामने ऐसी अटपटी भाषा में; ऐसा विचित्र वाक्य कहा कि भगवान खूब हँसे ! और हँसे ही नहीं, श्री सीता जी और लक्ष्मण की ओर हंस करके देखा ! इसीलिए केवट ने आगे चल करके कहा "महाराज ! मेरा दोष भी मिट गया, मेरा दुःख भी मिट गया, मेरी दरिद्रता भी मिट गयी।" क्यो ? बोला—"सारे संसार को आनंद देने वाले आप, पर जव आपको मैंने आनन्द दे करके हँसा दिया तो फिर मुझसे बढ करके श्रेष्ठ कौन रह गया ?"

गोस्वामीजी एक सूत्र देते है और वह सूत्र यह है कि केवट ने भगवान राम से ऐसी बात कही कि भगवान राम शरीर से तो खड़े थे गंगा के किनारे, पर भगवान मन से कहाँ पहुँच गये? सीताजी की ओर क्यों देख रहे हैं? ये जोभगवान राम आज इतना हँस रहे है, यह आज की हँसी नही है, यह पुरानी हँसी है। जिस हँसी को मर्यादा के कारण भगवान को रोकना पडा था। ये बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड में भगवान राम के चरित्र में इस "विहँसने" शब्द का प्रयोग तुलसीदास ने पहली बार किया है। मुस्कुराने का वर्णन है, मधुर मुस्कुराहट है, हँसने का वर्णन है,

पर 'विहँसने' का वर्णन नही है। ये हँसी के रामायण में अलग-अलग भेद है। पहली बार भगवान श्री राघवेन्द्र खुल के हँसे गंगा के किनारे। यह केवट को सौभाग्य मिला। इतना उन्मुक्त हास्य भगवान राम न तो अयोध्या मे हँस पाए और न ही मिथिला में। बड़े मर्यादावादी है। कभी-कभी तो मन मे मुस्कुराते है। अगर सामने वाले को हँसी से क्रोध आ जाय तो हँसना नही चाहिए, तो भगवान राम मन ही मन मुस्कुरा लेते है :—

भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ।
मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ॥

मन ही मन मुस्कुरा रहे है। कभी मधुर मुस्कुराहट। जो बड़े है उनके सामने मधुर मुस्कुराते हैं।

देखि राम जननी अकुलानी।
प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥

छोटों के सामने भगवान हँसते हैं :—

हँसे राम श्री अनुज समेता।
परम कौतुकी कृपा निकेता॥

वन्दरों के सामने हँसते है। और जव कोई वरावरी का मित्र मिल जाय तो खुलकर हँसते है। और ये 'विहँसने' के लिए— इसीलिये भगवान राम ने श्री सीता जी की ओर देखा, श्री लक्ष्मण जी की ओर देखा और यह कहा कि भई! "तुम लोग आनन्द में भाग नही ले रहे हो? मुझे तो लगता है कि यह जैसा वढ़िया पात्र तुम लोगो का अनुयायी मिला, वैसा कोई नही मिला।" लक्ष्मण जी ने प्रभु की ओर देखकर कहा कि—"यह केवट कल तक तो ऐसी भाषा नही वोलता था, पर आज क्यों ऐसी भाषा बोल रहा है?" वोले—"यह तुम्हारी रात की कथा का प्रताप है।" क्या? लक्ष्मण जी ने जो भाषण दिया था निषाद के सामने, उसका समापन यही किया गया।

सखा परम परमारथ एहू ।
मन क्रम वचन राम पद नेहू ॥

मन, कर्म और वचन से श्रीराम के चरणों में प्रेम करना, यही सबसे बड़ा परमार्थ है। बोले—"तुम्हारा शिष्य तो इतना बढ़िया निकला कि रात्रि को तुमने भाषण दिया और प्रातःकाल वह क्रियान्वित भी करने लगा ! तुम्हे तो प्रसन्न होना चाहिए कि भाषण सुनकर के ही नही रह गया, जीवन मे भी उतारा !"

और श्री सीता जी की ओर देखकर हँसने का अभिप्राय क्या ? भगवान शरीर से तो खड़े थे गंगा के किनारे, पर मन से पहुंच गये जनकपुर मे। भगवान राम को पुरानी यादें आने लगी। केवट ने ऐसी बात कह दी कि पुरानी बातें भी याद आयी, और जो पुरानी रोकी हुई हँसी थी, वह हँसी भी, यहां निकल पड़ी। जब धनुष टूट गया, सखियाँ सीताजी को ले करके आई और उन्होने कहा जयमाल पहिनाओ, तो जयमाल भी श्री सीताजी ने विलम्ब से पहिनाया। पर उससे भी बड़ा आश्चर्य तब हुआ कि जब सखियों ने कहा कि श्री राम के चरणो को पकड़ो !—

"सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता।" तो—
"करति न चरन परस अति भीता।"

'डर के मारे सीता जी प्रणाम ही नही कर रही है।' भगवान राम यहां पर हँस करके इसीलिए देख रहे है सीता जी को, मानो वे याद दिला रहे हैं, कि जनकपुर में मै प्रणाम कराने के लिए खड़ा था तो आपने प्रणाम भी नही किया था—

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।

तब मन तो भगवान का हुआ था कि खूब हँसें, पर इतने मर्यादावादी है कि सोचा जहाँ गुरुजन है, श्रेष्ठजन है, वहाँ इस तरह से हँसना ठीक नही होगा। तो भगवान राम को क्या करना पड़ा ? गोस्वामी जी ने शब्द लिखा—

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
'मन बिहँसे' हँसे तो वहुत, पर मन ही मन, वाहर नहीं ।"

उस समय हँसी को रोक लिया पर जव केवट ने गंगा के किनारे वही शब्द कहा कि आपके चरणों में कोई ऐसी दवा है जो पत्थर को स्त्री वना देती है, तो उन्होने सीता जी की ओर देखा कि यह तो आपका पक्का अनुयायी निकला। या तो आपने मुझसे ऐसा कहा था या फिर इसने कहा। और सचमुच सीता ! उस समय तो मै हँस नही पाया, पर आज मर्यादा का कोई वन्धन नही। गंगा के किनारे मेरे उन्मुक्त आनंद को प्रगट करने वाला यह मित्र, इसके आनंद में आप लोग क्यो नही भाग ले रहे है ? इस तरह से भगवान श्री राघवेन्द्र आनंदित हो रहे हैं। अव शेष दो दिनों में उत्तर प्रसङ्ग पूरा होगा. आज इतना ही।

॥ वोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ॥

॥ श्री रामः शरणं मम् ॥

७

तो आइये गंगा के किनारे मनः शरीर से चलें और वहाँ हठीले केवट और भगवान श्री राम के बीच जो अनोखा प्रेम भरा वार्तालाप चल रहा है, उस वार्तालाप के पीछे जो निहित उद्देश्य है, उसे हृदयङ्गम करने की चेष्टा करे। केवट की अटपटी और विचित्र भाषा को सुन करके प्रारम्भ में जनकनन्दिनी सीता और श्री लक्ष्मण थोडे चकित हुए। लेकिन भगवान श्री राघवेन्द्र ने केवट की वाणी में बहुत अधिक आनन्द लिया। और उन्मुक्त भाव से भगवान राम दिल खोल करके हँसे। हँस करके उन्होंने जनकनन्दिनी श्रीसीता और श्रीलक्ष्मण की ओर देख करके, उन्हे भी मानो इस आनंद उल्लास मे सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। और उसके पश्चात् केवट ने जैसा कहा था, भगवान श्री राम ने शब्दशः केवट की इच्छा का पालन किया। मुस्कुरा करके उन्होने कहा—"अच्छा भाई ! तुम वही काम करो जिससे तुम्हारी नौका न जाये।" पर इतने पर भी केवट नही उठा तो भगवान राम कहते है कि अच्छा, तुम शीघ्रता से जल ले आओ। मेरा चरण धो दो। मुझे पार उतार दो। मुझे अत्यन्त विलम्ब हो रहा है। भगवान राम के इन वाक्यो को सुनते ही केवट आनन्द में मग्न हो जाता है। और काठ का कठौता, गंगा जल जिसमें भरा हुआ है, ले करके आता है और बड़े ही अनुराग भरे हृदय से भगवान श्री राम का चरण पखारने लगता है। तो बीच मे तो बहुत सी बाते छोड़नी पड़ेगी, क्योकि नौ दिन मे कथा प्रसङ्ग पूरा कर पाना सम्भव नही है। और इधर कई वर्षो से तो आठ दिन का ही नवरात्र हो रहा है। पर प्रभु

उतावले हो रहे है तो उनको भी पार उतारना ही चाहिये। बीच में यदि प्रसङ्ग छोड़ दूँ तो प्रभु सन्तुष्ट नहीं होगे। इसलिए आ जाइए, यह जो केवट के द्वारा भगवान श्री राम का चरण प्रक्षालन है; इस पर विचार करे।

गोस्वामी जी ने बड़ी मनोवैज्ञानिक भाषा लिखी है कि जिस समय केवट भगवान श्री राम के चरण धोने लगा, उस समय आकाश से देवताओ ने फूल वरसाए। और फूल ही नही बरसाए, उनके मुह से यह वाक्य निकला कि इस निषाद के समान पुण्यात्मा आज तक कोई हुआ ही नही। तो दो वाते इसमें बड़े महत्त्व की है। एक इस अवसर पर देवताओ द्वारा पुष्पो की वृष्टि और उसके साथ-साथ यह घोषणा कि इसके समान कोई पुण्यात्मा नही हुआ। इसके पीछे स्वयं देवताओं की वड़ी विचित्र मनःस्थिति है। वैसे साधारणतया पहले जब लोग केवट को देखते रहे होंगे, निषाद पर लोगो की जव दृष्टि जाती रही होगी, तो जो वर्ण व्यवस्था को कर्म का परिणाम मानते है, उनके मन मे यह वात अवश्य आती होगी कि पूर्व जन्म के किसी बुरे कर्म के परिणामस्वरूप ही इसे निषाद वनना पड़ा है। पर आज जब केवट भगवान श्री राम के चरण धो रहा है, तो सारे विचार बदल गए। वस्तुतः यहाँ पर भी एक बात है। इसके पीछे उन्होंने केवट का पुण्य देखा। तो केवट के पुण्य देखने के पीछे उनका मनोविज्ञान यह है कि देवत्त्व जो प्राप्त होता है, वह पुण्य से ही प्राप्त होता है। तो इसलिए जव भी वे केवट के इस चरण प्रक्षालन को देखते है, तो उसमें भगवान की कृपा का आनंद नही ले पाते। अपितु, यह कल्पना करके संतुष्ट हो जाते है कि भई, इस जन्म में नही तो कभी इसने इतना पुण्य किया होगा, जिसके परिणामस्वरूप इसको यह सोभाग्य मिला है। और इतना ही नही कि उन्होने उसे पुण्यात्मा और भाग्यशाली ही स्वीकार किया; वलिक उन्होने तो यह कहा कि केवट के समान कोई पुण्यात्मा हुआ ही नही। तो सचमुच देवताओ के द्वारा कहा गया यह वाक्य पढ़ने के पश्चात् यदि आप उन पात्रों से तुलना करेंगे, तो आपको सचमुच यह प्रतीत होने लगेगा कि केवट के इस कार्य के पीछे पुण्य है या नही, यह तो देवताओं की बात थी किन्तु, सचमुच केवट

इतना वड़ा सौभाग्यशाली है कि उसके सौभाग्य की तुलना मे इतिहास मे अन्य सौभाग्यशाली भी पिछड़ जाते है। जव केवट के द्वारा भगवान श्री राम के चरण प्रक्षालन का वर्णन किया गया, तो स्वाभाविक रूप से इतिहास पर दृष्टि जाती है। और केवट से पहले जिन लोगों ने भगवान श्री राम के चरण धोए थे, उन पात्रो की स्मृति आती है, तो उन पात्रों से केवट की तुलना की वात उठना स्वाभाविक है। तो इस प्रसङ्ग में केवट से यदि उन पात्रो की तुलना करना चाहें, तो इसमे तीन नाम वड़े महत्त्व के है। एक तो ब्रह्मा। ब्रह्मा और केवट की तुलना। क्योंकि ब्रह्मा के द्वारा सवसे पहले भगवान (नारायण) वामन के चरण धोए गए। तो चरण धोने का सवसे पहला सौभाग्य ब्रह्मा को मिला। और फिर चरण धोने से जो गंगा वनी, उनको मृत्युलोक में लाने का सौभाग्य भगीरथ को प्राप्त हुआ। तो आइये, थोड़ी ब्रह्मा और केवट की तुलना करें। भगीरथ और केवट को सामने रखकरके देखें। और पुराण के इतिहास से नीचे उतर करके आगे अगर रामायण के इतिहास मे देखे तो वालकाण्ड में महाराज श्री जनक के द्वारा भगवान श्री राम का चरण प्रक्षालन किया गया। तो महाराज श्री जनक, भगीरथ और केवट के चरित्र की तुलना करे, तो इसमें एक विलक्षण विरोधाभास आपको दिखाई देगा। मैं आशा करता हूं कि आप पूरी एकाग्रता से प्रसंग को सुनेगे।

ब्रह्मा के द्वारा भगवान का चरण प्रक्षालन और केवट के द्वारा भगवान का चरण प्रक्षालन, एक दूसरे से सर्वथा भिन्न स्थितियो में हुआ। ब्रह्मा ने भगवान का चरण तव धोया, जव भगवान ने विराट वन करके सारे ब्रह्माण्ड को दो पग में नाप लिया। और केवट ने भगवान का चरण तव धोया, जव ब्रह्माण्ड को नापना तो दूर रहा, गगा की धारा को भी भगवान नाप कर पार नही जा सके। वड़ा आश्चर्य होता है ईश्वर के इन दोनो रूपो को देखकर! एक इतना विराट और दूसरा इतना असमर्थ! और साङ्केतिक भाषा वड़ी विलक्षण है। क्या? ब्रह्मा ने भगवान का चरण धोया कमण्डल मे। ब्रह्मा का दिव्य कमण्डल। और केवट ने भगवान का चरण धोया काठ के कठौते में। कहाँ ब्रह्मा का कमण्डल, कहाँ केवट का कठौता! तो ब्रह्मा से

केवट के सन्दर्भ में विचार करके देखे तो प्रारम्भ से ही अन्तर है। ब्रह्मा जो है, वे वेद के मूल वक्ता है। उसके मूल आचार्य है। और केवट की सबसे बड़ी समस्या यह है कि उसको वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं दिया गया। उसने भगवान श्री राम से विनोद भी यही किया। उसने कहा—"महाराज यदि आपने मेरी नौका को नारी बना दिया, तो दोनों तरह से समस्या है।" उसने व्यङ्ग किया—"तरनिउ मुनि घरनी होइ जाई।" 'महाराज ! मेरी नौका भी किसी मुनि की पत्नी हो जाएगी।' तो व्यंग यह था कि आपने जब पत्थर को चैतन्य किया था तो वह मुनि की ही पत्नी तो बनी थी। तो मेरी नौका को भी आप मुनि पत्नी ही बना देगे। भगवान श्री राघवेन्द्र केवट के व्यंग केउत्तर मे यह कह सकते है—"नही, नही, ऐसा तुम क्यो कहते हो ? वह शिला तो मुनि पत्नी ही थी, तो ऐसी स्थिति में वह मुनि की पत्नी बनी। और अगर यह नौका तुम्हारी है, तो तुम्हें सन्तुष्ट हो जाना चाहिए कि यह मुनि पत्नी नही बनेगी। तो केवट ने और बड़ा व्यंग भगवान पर किया। 'कवितावली' रामायण में गोस्वामी जी कहते है कि केवट ने कहा—"महाराज ! इसमें तो और बड़ा संकट है।" क्यो? बोले—"घरनी घर क्यों समुझाइहौजू।" अगर मेरी नौका स्त्री हो गई तो मै अपनी पत्नी को कैसे समझाऊँगा ?" मानो कटाक्ष था कि जब महाराज दशरथ, अनेक रानियों को समझाने मे समर्थ नही हुए तो मुझ जैसा केवट क्या किसी प्रकार से समर्थ होगा ? तो महाराज ! मेरा परिवार बढ़ जाय, मुझे यह भी प्रिय नही है। और सबसे बड़ी चिन्ता तो मुझे यह है कि अगर मेरी नौका चली जाय और मै कोई विद्वान् होता, वेद का पण्डित होता तो चलिए-नौका चलाने के स्थान पर वेद की बाते करने लगता! लेकिन महाराज ! मैं क्या बताऊँ, आपके जो धर्मशास्त्री हैं, उन्होंने मुझे वेद पढ़ने का भी अधिकार नहीं दिया। तो उसने व्यंग भरी भाषा में कटाक्ष किया, गोस्वामी ने लिखा—"केवट की जाति कछु वेद न पढ़ाइहौ।" मैं केवट जाति का हूं, ऐसी स्थिति में वेद को पढ़ाने में भी तो समर्थ नही हूं ! इसका अभिप्राय क्या है ? दोनों पात्रों मे यदि तुलना करके देखे—तो ! एक ओर वेद के वक्ता और वेद के

प्रथम आचार्य ब्रह्मा, और दूसरी ओर वह केवट, जिसे वेद पढ़ने का अधिकार भी नही।

रामचरितमानस मे इस प्रसङ्ग के माध्यम से भगवत् प्राप्ति का अनोखा तत्त्व प्रस्तुत किया गया। यह जितना विनोद भरा प्रसग है, उतना ही तात्त्विक और गम्भीर भी। और वह यह है कि वस्तुतः ईश्वर की प्राप्ति किसे होती है, और कैसे होती है? यह प्रश्न अनादि काल से व्यक्ति के अतःकरण मे उदित होता रहा। संसार में किसी महापुरुष को जब ईश्वर की प्राप्ति होती है तो स्वाभाविक रूप से ईश्वर की प्राप्ति होने वाले व्यक्ति में जो-जो विशेषताये विद्यमान होती है, जो-जो साधन और जो-जो गुण विद्यमान होते है, दूसरा व्यक्ति सोचता है कि भगवान को यदि पाना हो तो वही विशेषताये अपने मे लानी होगी। हमे ऐसा-ऐसा भोजन करना होगा; ऐसे-ऐसे रहना होगा, ऐसे-ऐसे साधन करना होगा। और इस प्रकार से एक महापुरुष जब भगवान को पाता है तो दूसरे के अंतःकरण मे भी ईश्वर की प्राप्ति का एक मार्ग दिखाई देता है। लेकिन, क्या ईश्वर की प्राप्ति सीमाओ मे घिरी हुई है क्या? इसीलिए इसको रामचरित-मानस मे गोस्वामी जी ने बडी साङ्केतिक भाषा मे कहा—"ब्रह्म कैसा है?" तो उन्होने कहा—"जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।" जो अगम भी है और सुगम भी है! तो यह जो शब्द कहा गया है, बडा विचित्र सा शब्द है, पर इसके पीछे एक निहित तत्त्व है। और वह यह है कि सांसारिक वस्तु की प्राप्ति में और ईश्वर की प्राप्ति मे सबसे बड़ा अन्तर क्या है? सासारिक वस्तु की प्राप्ति में समस्या यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जो है, वह प्रत्येक वस्तु को नही पा सकता है। कोई वस्तु आपको लगती है कि यह वस्तु बहुत बड़ी आकर्षक है, बड़ी प्रिय है, लेकिन आपको मूल्य चुकाने की सामर्थ्य नही है, तो आप उस वस्तु को नही पा सकते। जिसके पास मूल्य चुकाने की सामर्थ्य है, वही व्यक्ति उस वस्तु को पा सकता है। और अगर संसार की वस्तुओ की प्राप्ति से, ईश्वर की प्राप्ति की तुलना करें, तो साधारणतया लोगो के मस्तिष्क मे यह धारणा घर कर गई है, लोग ऐसा मानते है कि, सासारिक वस्तुओ की प्राप्ति

करना सरल है, पर ईश्वर की प्राप्ति करना कठिन है। पर यह केवल भ्रान्त धारणा है, मानी हुई धारणा है। सत्य यह है कि, सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति कठिन है और भगवान की प्राप्ति सरल है। केवल अभ्यास के कारण, या किसी संस्कार के कारण, हमने यह मान लिया है कि उसकी प्राप्ति कठिन है। ईश्वर की प्राप्ति क्यों सरल है ? तो इसका एकमात्र कारण यह है कि वाजार में कोई ऐसी दूकान मिल जाय आपको, कि जो वस्तु का दाम निश्चित न किए हो। आप वस्तु लेने जाये, और उससे पूछे कि, वस्तु का कितना दाम है ? ओर अगर वह कहीं कह दे कि, आपके जेव मे जितने पैसे है, उतने ही दाम है। तव तो वड़ी सुविधा हो गई! अगर ऐसी सुविधा देने वाला दूकान-दार मिले तो वस्तु जो है, प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ हो जाएगी। तो ईश्वर की प्राप्ति के साथ सवसे वड़े महत्त्व की वात यह जुड़ी हुई है कि साँसारिक वस्तुओं की प्राप्ति, व्यक्ति की योग्यता, समृद्धि, सामर्थ्य और बुद्धिमत्ता आदि के माध्यम से की जाती है, पर ईश्वर की प्राप्ति के लिए व्यक्ति मे इन विशेषताओं का होना आवश्यक नही। ये जो दोनों प्रसंग है—उनका अभिप्राय क्या है ? ब्रह्मा को भी ईश्वर की प्राप्ति होती है, केवट को भी ईश्वर की प्राप्ति होती है। केवट निषाद है, ब्रह्मा ज्ञान और बुद्धि के देवता है। केवट की भाषा इतनी अटपटी है कि उसको सुन करके ही वड़ा विचित्र प्रतीत होता है। लेकिन जव दोनों को समान रूप से ईश्वर की प्राप्ति होती है तो मानों इससे वढ़ करके व्यक्ति को कोई आश्वासन नही दिया जा सकता कि आप अपने मन में यह मानकर के मत चलिए कि, ईश्वर की प्राप्ति उस व्यक्ति को होगी, हमें नही होगी। अगर ईश्वर की प्राप्ति होती है तो उसका मूल सिद्धान्त एक ही है। ईश्वर की प्राप्ति के लिए आपके पास जो साधन विद्यमान है, आप उतने मात्र के द्वारा ही ईश्वर को पा सकते है। यह वात रामायण के भिन्न-भिन्न पात्रो के माध्यम से वताई गई। और यह जो वात वताई गई है, समझने योग्य है, हृदयंगम करने योग्य है।

अव इसको जरा तात्त्विक दृष्टि से भी देखिये। जव यह कहा जाता है कि प्रभु प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे हैं—तो, यह भेद तो नही

किया गया कि किस व्यक्ति के हृदय में है और किस व्यक्ति के हृदय में नही है ? यहाँ पर जव यह कह दिया गया कि ईश्वर जो हैं, बुरे से बुरे व्यक्ति के, जड़-चेतन जितने प्राणी है सवके अंतःकरण में विद्यमान है, तो वहा पर भी साङ्केतिक सूत्र यही है कि ईश्वर है जो किसी से दूर नही है और, किसी के लिए दुर्लभ नही है। तो फिर ये दूरी और दुर्लभता की वात क्यो आती है ? इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण है, और वह विल्कुल ठीक है। कुछ लोगों को ईश्वर दुर्लभता से मिलता है और मिलना चाहिए। और कुछ लोगो को ईश्वर सर-लता से मिलता है। और यही प्रसंग आपके सामने दिया गया। तो इसका मूल तात्पर्य क्या है ? इस रहस्य का अभिप्राय यही है कि दुर्लभता में साधन की महिमा है और सुलभता मे कृपा का तत्त्व है।

इसे गोस्वामी जी ने विविध पात्रो के माध्यम से इस रूप में प्रस्तुत किया कि, जैसे—मनु भगवान को पाना चाहते है तों, मनु के प्रसंग को जव कोई व्यक्ति पढ़ता है तव उसके अन्न:करण में साधना का एक अद्भुत क्रम दिखाई देता है। किस तरह से वे राज्य का परित्याग करके वन में जाते है, वन मे जाकर के तपस्या करते है; मंत्र जप करते हैं, फलाहार करते है; उपवास करते है और सावना की परा-काष्ठा मे, अन्त में जाकर के भगवान का उन्हे साक्षात्कार होता है। मनु के जीवन में ईश्वर की प्राप्ति का यह क्रम है। लेकिन, रामचरित मानस के जो दूसरे भिन्न पात्र हैं, जिन्हें भगवान की प्राप्ति होती है। जैसे शवरी—शवरी को भी जाने दें क्योंकि, शवरी के भी जीवन में साधना और प्रीति का वर्णन किया गया है। पर जिस तरह से गीध को भगवान की प्राप्ति होती है; वन्दरों को भगवान की प्राप्ति होती है; जिस तरह से केवट को भगवान मिल जाते है;—गोस्वामी जी को इसी वात से लङ्का का ध्यान वड़ा प्रिय लगा। भगवान श्री राम दशरथ की गोदी में वड़े सुन्दर है। गोस्वामी जी उस झाँकी का वड़ा सुन्दर वर्णन करते है। भगवान श्री राम दूल्हे के रूप मे जा रहे हैं या महाराज जनक के मण्डप में हैं, वह रूप भी अत्यधिक सुन्दर है। भगवान राम चित्रकूट में "लसित मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु" वड़े आकर्षक प्रतीत होते है। लेकिन, गोस्वामी जी कहते है कि प्रभु

मुझे तो आप सर्वाधिक आकर्षक प्रतीत होते है—लङ्का मे। लङ्का मे क्यों प्रतीत होते है? लङ्का मे उनके चारो ओर जो पात्र बैठे हुए हैं, वे या तो वन्दर है या राक्षस है। तीन बन्दर और एक राक्षस के वीच में भगवान बैठे हुए है। तो साङ्केतिक भाषा क्या है? कहा जाता है कि ध्यान अगर ईश्वर का करना हो तो, पहले मन की चचलता को मिटाइये और जब मन शांत होगा, एकाग्र होगा, तो भगवान का ध्यान होगा। और भगवान का ध्यान करते-करते जब एकाग्रता पूरी वढ़ जायगी तो भगवान की प्राप्ति होगी। पर,गोस्वामीजी यहाँ पर एक क्रम वदल देते है। और वह क्रम है—कि नही, प्रभु! जब आप महाराज दशरथ की गोद में बैठते है तो यही लगता है कि आप एकाग्रता से ही गोद में आते है। दशरथ, भगवान को पाने के लिए मनु रूप में पहले साधना करते है, फिर दशरथ के रूप मे जन्म लेकर के आपको बालक के रूप में पा लेते है। और पा लेने के बाद भी गोस्वामी जी कहते है, इतना एकाग्र रहना चाहिए ईश्वर के संदर्भ में—कि, एक क्षण के लिए महाराज दशरथ का ध्यान बँटा तो ईश्वर दूर चला गया। गोस्वामी जी ने वड़ा मधुर बाल्यावस्था का, वाल स्वरूप का, चित्र प्रस्तुत किया है। महाराज श्री दशरथ भोजन करने के लिए बैठे, गोस्वामी जी ने लिखा—"भोजन करत बुलावत राजा।" महाराज श्री दशरथ को भोजन करते हुए अचानक याद आया कि अरे! राम तो है ही नही। उन्होने श्री राम को बुलाने के लिए कहा। श्री राम पहले तो मिले ही नही। सुमन्त जी ने जब जाकर के कहा कि चलिए! तो—भगवान श्रीराम ने कह दिया :—

भोजन करत बुलावत राजा।
नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

वोले—जाकर के कह दो मै नहीं आऊँगा। और इसके पश्चात्, दशरथ निराश होने वाले नहीं थे। सुमन्त्र जी ने बुलाया तो नही आए, तो उन्होने कौशल्या जी को भेजा—वोले, आपको 'नाही' करने की शक्ति उनमें नही है। आप जाइए और पकड़ लाइए! देखें, कैसे नही आएँगे? यह ईश्वर को पकड़ लेने की वृत्ति है, पा लेने की वृत्ति है।

ईश्वर को पकड़ने के लिए पहले उन्होने जिस वृत्ति का आश्रय लिया, उस वृत्ति से ईश्वर आया नही। क्योकि, सुमन्त्र से भूल हो गई। उन्होने श्री राम से कहा कि चलिए ! राजा बुला रहे हैं। अगर कही कह देते कि चलिए पिताजी बुला रहे है, तब तो भगवान राम दौड़े चले आते। उनके मुंह से शब्द निकल गया—"भोजन करत बुलावत राजा।" राजा महोदय ! आपको बुला रहे हैं। ज्यों ही 'राजा' शब्द कानो में पड़ा—प्रभु ने सोचा, मै राजाओं का महाराजा हू। यह कौन राजा आ गया, मुझे बुलाने वाला ! इस राजा को मेरे पास आना चाहिए कि मुझे बुलाना चाहिए ? राजा शब्द से प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई। लेकिन कौशल्या, वह तो भावनामयी, भक्तिमयी है। जब वे स्वयं बुलाने के लिए जाती है तो बालको ने कहा—माँ ! आ रही है, अब उनसे क्या नाही कीजिएगा ? नाहीं तो नहीं करेगे, पर थोड़ा इन को भी थकाएँगे। भागे—

कौशल्या जब बोलन आई।
ठुमुक ठुमुक प्रभु चले पराई।।
निगम नेति सिव अंत न पावा।
ताहि धरे जननी हठि धावा।।

और अन्त में इस दौड़ मे श्री राघवेन्द्र धूल मे गिर पड़े। और माँ ने स्नेह से धूल-धूसरित श्री राम को गोद मे उठा लिया और मुस्कुराते हुए लाकर के महाराज दशरथ की गोद मे सौप दिया। इस का अभिप्राय यह है कि, बाह्य वैभव के द्वारा जो ईश्वर नही आया, वह अंत.करण की भक्ति भावना से प्रेरित होकर के, सचमुच वशीभूत होकर के, गोदी मे आ गया। लेकिन, अब भगवान के सामने बड़ी जटिल समस्या आ गई। क्या ? एक भक्त दशरथ और दूसरा भक्त कौआ। वहाँ पर भी विचित्र विषमता है। महाराज श्री दशरथ के आँगन में काग भुशुण्डि जी नन्हें से कौए रूप में है। और वे इस प्रतीक्षा मे है—

"जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाऊँ।"

जो जूठन गिरे उसको उठाकर के खाऊँ ! जब महाराज दशरथ के गोद में बैठकर के प्रभु भोजन करने लगे, तो कागभुशण्डि जी बड़े निराश हुए। आज तो भोजन वही हो रहा है। तो जूठन गिरेगा कैसे ? प्रसाद मिलेगा कैसे ? तो बड़ी विचित्र बात आई। एक भक्त खिला रहा है और दूसरा भक्त जो है वह खाने के लिए व्यग्र है। दशरथ खिला रहे है श्री राम को, और श्री कागभशुण्डि जी प्रसाद पाने को व्याकुल हो रहे है। ईश्वर की विलक्षणता क्या है ? गोस्वामी जी ने वाल स्वभाव का भी वर्णन किया और दोनों ओर के आकर्षण का, खिचाव का वर्णन किया। गोस्वामी जी कहते है भगवान राम भोजन तो कर रहे है, पर "भोजन करत चपल चित इत उत" भगवान राम भोजन करते हुए भी इधर-उधर देख रहे है और इधर-उधर क्या देख रहे है ? तौल रहे हैं कि भई ! इनके पास रहें कि उनके पास चले जाएँ। वे भी चाहते हैं, ये भी चाहते है। गोस्वामी जी ने कहा—वस, ऐसा अवसर मिला कि भगवान महाराजा दशरथ की गोद से भागे और श्री कागभुशुण्डि जी के पास चले गए। एक क्षण के लिए महाराज श्री दशरथ का ध्यान श्री राम से हटकर के भोजन के स्वाद पर चला गया। और ज्यों ही ध्यान गया, गोस्वामी ने कहा—

भोजन करत चपल चित इतउत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ॥

दही-भात खूव लपेट लिया, वोले भक्त को प्रसाद तभी मिलेगा, जव गिरेगा। इसलिए दही-भात खूव लिपटा रहे। तभी तो गिरेगा। और दही भात लपेटे हुए जाकर के कागभुशुण्डि जी को प्रसाद दे देते हैं।

भगवान दोनो को मिले, पर सङ्केत यह है कि भगवान को पाने के लिए कितनी एकाग्रता की अपेक्षा है ? कितनी कठिनाई से ईश्वर मिला ? और एक क्षण के लिए भी अगर मन विचलित हुआ, तो ईश्वर दूर चला गया। ईश्वर का मिलना और ईश्वर के दूर होने का तात्पर्य क्या है ? सासारिक वस्तुओ के मिलने और दूर होने के समान, ईश्वर की प्राप्ति और दूर होना नही है। इसका अभिप्राय है कि, जव हमारा ध्यान ईश्वर की ओर होता है तो ईश्वर हमारे निकट होता

है। और जब ईश्वर से हमारा ध्यान हटकर के दूर चला जाता है तो ईश्वर हम से दूर चला जाता है। यही इसका अभिप्राय है। तो ऐसी परिस्थिति में लगता है ईश्वर को पाना कितना कठिन है? कितना सजग रहने की आवश्यकता है, कितनी तपस्या की आवश्यकता है? लेकिन नही, नही, जब भगवान श्री राघवेन्द्र वन्दरो के बीच मे बैठते हैं। और बन्दर जो है, "कपि चंचल सबहीं विधि हीना" चंचलता का स्वरूप हैं। और यहा पर, ब्रह्मा और केवट के प्रसंग में भी एक साङ्केतिक धारणा है। ब्रह्मा का कमण्डल और केवट के कठौते का तात्पर्य क्या है? ब्रह्मा को देखकर के ऐसा लगता है कि अगर भगवान के चरणों को धोना है, चरणों को पाना है, तो उसके लिए पात्र बनना होगा। जब व्यक्ति पात्र बनेगा तो ईश्वर के चरणों की प्राप्ति उस व्यक्ति को होगी। तो सचमुच ब्रह्मा को जिस तरह से ईश्वर के चरणों की प्राप्ति हुई, वही साधनात्मक क्रम है। ब्रह्मा का कमण्डल माने? ऐसा पात्र कि—जिसमे भावना के अनुराग का जल भरा हो। और ब्रह्मा स्वयं बुद्धि के देवता है। तो जिस समय बुद्धि के देवता को भगवान को, असीमता का साक्षात्कार होता है—भगवान विराट् बने, और जब ब्रह्मा, विराट् भगवान को देखते है, तो ब्रह्मा के अन्तःकरण में श्रद्धा और अनुराग का उदय होता है। यह देखने-देखने की दृष्टि है। किसी के मन मे अनुराग उमड़ता है भगवान का बड़प्पन देखकर और किसी के मन में भगवान के प्रति प्रेम उमड़ता है उन्हें छोटा देखकर। भगवान श्रीराम जब धनुष-मण्डप में हैं तो गोस्वामीजी ने कहा—"विदुषन्ह प्रभु विराटमय दीसा" जो विद्वान थे, उनको लगा, भगवान विराट है। और वहाँ जब महाराज जनक और सुनयना जी ने देखा तो उन्हे क्या लगा?—

सहित विदेह बिलोकहिं रानी।
सिसुसम प्रीति न जाति बखानी॥

उन्हे तो लगा कि यह तो नन्हें से बालक हैं। तो विराट् है कि नन्हे से बालक है? एक बड़ा सुन्दर वाक्य उपनिषदों में कहा गया—ब्रह्म कैसा है? तो कहा गया—"रणोरणीयान महतो महीयान" महान से

महान भी वही है और लघु से लघु भी वही है। वह तो दोनों ही है। पर इसका एक तात्पर्य यह भी है कि आपके मन में जिस बात के प्रति आग्रह होगा, यदि आपके अन्त:करण में ऐश्वर्य के प्रति आकर्षण है, तो ईश्वर की महिमा से आप प्रभावित होंगे। अगर, आपके मन में वात्सल्य है तो आप ईश्वर की मृदुता से और ईश्वर की मधुरता से प्रभावित होगे। और ये दोनों ही अपना-अपना स्थान रखते है। जिन्होंने विराट रूप में देखा उनकी, अपनी दृष्टि है, और जिन्होंने नन्हे से बालक के रूप में देखा उनकी, अपनी दृष्टि है।

इस प्रसंग में भी इसी तत्व का प्रतिपादन किया गया। ब्रह्मा के संदर्भ में, भगवान जो है वे 'महतो महीयान' है। और केवट के प्रसंग में भगवान "रणोरणीयान" है। ब्रह्मा बुद्धि के देवता हैं। बुद्धि का यह स्वभाव है कि जब किसी की महिमा और ऐश्वर्य का बोध होता है, तभी बुद्धि में श्रद्धा का उदय होता है। इसलिए दो साकेतिक भाषा पुराणों में आती हैं। सारे बन्दर जो हैं, विभिन्न देवताओं के अवतार हैं और उसमें जाम्बुवान जी जो है, वे ब्रह्मा के अवतार है। आपने पढ़ा होगा समुद्र के किनारे जब समुद्र को पार करने का प्रसङ्ग आया, तो—

निज निज बल सब काहू भाषा।
पार जाइ कर संसय राखा॥

सब लोगों ने असमर्थता बताई। जाम्बुवान जी बैठे थे। कुछ युवको की दृष्टि जाम्बुवान जी पर चली गई। यह क्यों नही बोल रहे है? तो—जाम्बुवान जी को अपनी जवानी की याद हो आई। ऐसा होना बड़ा मनोवैज्ञानिक है। तो जाम्बुवान जी को तुरन्त उन युवकों को देखकर के, अपनी जवानी की याद आ गई। बोले—"आज मै नही बोल रहा हूं, तो आप लोग यह न समझ लीजिए कि मै सदा ऐसा ही था।" तब? तो उन्होने अपना संस्मरण सुनाया—

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा।
नहि तन रहा प्रथम बल लेसा॥

जबहिं त्रिविक्रम भए खरारी।
तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी।।
बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्ही सात प्रदच्छिन धाइ।।

जाम्बुवान जी दो रूपो मे—ब्रह्मा के रूप में तो कमण्डल में चरण धो रहे है। और जब भगवान बलि की यज्ञशाला में विराट् बने, तो उस विराट् की प्रदक्षिणा जाम्बुवान जी ने दो घडी में कर डाली। ब्रह्मा के स्वभाव की ओर आपका ध्यान गया ? भगवान जब वामन थे, तब भी भगवान ही थे। और जब भगवान विराट् बने, तब भी भगवान ही थे। पर ब्रह्मा ने परिक्रमा वामन की नही की, विराट् की ही की। और इसका कारण है कि वामन के प्रति उनमे उतनी श्रद्धा और आकर्षण का उदय नही हुआ और जब विराट् बने तो महिमा का बोध हुआ। और दूसरी बात भी उनके साथ जुड़ी हुई है। क्या ? विराट् की परिक्रमा के साथ-साथ अगर वे वामन की परिक्रमा कर लेते, तो उन्होंने, जो बडे उत्साह से सुनाया कि मैं दो घड़ी में सात परिक्रमा कर चुका हूं, यह इतिहास सुनाने के लिए नही रह जाता ! इसका अभिप्राय यह है कि भगवान के बड़प्पन के साथ-साथ अपनी महिमा की स्मृति भी है। भगवान बड़े है, तो मैंने भी परिक्रमा की है। तो भई ! जो बुद्धि से युक्त है, जो ब्रह्मा की दृष्टि से देखता है, वह परिक्रमा भी वामन की नही करता, विराट की करता है। पूजा भी करता है तो विराट की ही करता है। और विराट है जो कि सारी पृथ्वी को दो पग मे नाप लेता है। तो वस्तुतः, यह ब्रह्मा का जो दिव्य चिन्मय कमण्डल है, उसमे महत् भाव का जल भरा हुआ है। और ज्योही ईश्वर की महिमा का, असीमता का बोध हुआ, तुरन्त ही बुद्धि के देवता नत हो गये और, भावना के जल से भगवान के चरणों को पखार लिया। इसका अभिप्राय यह है कि हमारे-आपके जीवन में भी जब बुद्धि, रस से सिक्त होती है और बुद्धि, रस से सिक्त होने के पश्चात्, रस से भीगी हुई बुद्धि, भगवान के चरणो से लगती है, तब उसका परिणाम होता है कि हमारे अन्त करण में भक्ति-गंगा का उदय होता है। इस दृष्टि से भक्ति के आगमन का एक पक्ष यह है

जो ब्रह्मा के चरित्र में दिखाई देता है जहाँ पर कि, ईश्वर की असीमता के साथ-साथ श्रद्धा और, श्रद्धा के साथ-साथ भगवान के चरणों की प्राप्ति होती है। पर इसमें सङ्केत यह है कि, यह जो ब्रह्मा के कमण्डल के जल से प्रक्षालित पद वाला ब्रह्म है, उसकी उपलब्धि भी उतनी ही दुर्लभ है। ब्रह्मा ने विराट् को पाया। वस्तुतः, मनुष्य के मन में बड़ी विचित्र सी ग्रन्थि है। और वह ग्रन्थि यह है कि व्यक्ति कभी-कभी वस्तु का ठीक-ठीक मूल्य नही कर पाता है। अपितु जो वस्तु जितनी दुर्लभ होती है व्यक्ति, उस वस्तु को उतनी ही मूल्यवान समझता है। और जो वस्तु जितनी सुलभ होती है, उस वस्तु की महिमा का उसे बोध नहीं होता है। भगवान किसी-किसी को बड़े महँगे मिलते हैं और किसी-किसी को बडे सस्ते मिलते है। तो मीरा का पद आपने सुना होगा—"कोई कहे महँगो कोई कहे सस्तो" तो भगवान जो हैं, किसी को महँगे मिलते हैं और किसी को सस्ते। महँगे किसको मिलते हैं? जिनको कम दाम देने में लगता है कि वस्तु किसी काम की नहीं है, इसीलिए इतने कम दाम में मिल गई। तो भगवान कहते है कि, दाम बढ़ाकर के दो, तभी उनको हमारी प्राप्ति का बोध होगा। और जो असमर्थता की स्थिति में है, जो अपनी सामर्थ्य को देखकर के नहीं, अपनी असमर्थता से पाना चाहते हैं, भगवान उन्हें सस्ते मिलते है। जो दुर्लभता से पाना चाहते है, भगवान उन्हे दुर्लभता से मिलते है।

तो यह जो ब्रह्मा का पक्ष है उसके अनुसार ईश्वर कैसे मिलेगा? बोले—वेद का अध्ययन कीजिए, ज्ञान प्राप्त कीजिए और ईश्वर की विराट्ता का बोध प्राप्त करने पर, ईश्वर में श्रद्धा उत्पन्न होगी और तब ईश्वर मिलेगा। तो यह परम्परा ही दुर्लभता की परम्परा है। क्या? अगर गंगा, ब्रह्मा के कमण्डल में है तो ब्रह्मा के कमण्डल की गंगा का अभिप्राय ही यह है कि गंगा है तो, पर जो जितना बड़ा वेद-विद् हो, जो सर्वोच्च शिखर पर हो, उसी को यह गंगा प्राप्त होगी। लेकिन, आवश्यकता गंगा की मृत्युलोक में थी। कथा आती है कि, राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे और अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को वे खोजने के लिए गए। बड़ी साङ्केतिक भाषा, आपके ध्यान में आई होगी

शायद ! यह जो 'सागर' शब्द, समुद्र के लिए कहा जाता है इसके सम्बन्ध मे मान्यता यह है कि सगर के बेटों ने अपने नाखून से खोद कर के समुद्र को प्रगट कर दिया। और उसी कुल में एक दूसरे पुत्र उत्पन्न हुए—'भगीरथ', जिन्होंने गङ्गा को प्रगट कर दिया। लेकिन आज भी यह नियम है कि, यदि कोई महान कार्य करे तो कोई यह नहीं कहता कि इन्होंने 'सगर-प्रयास' किया। जो कहता है वह यही कहता है कि, 'भगीरथ-प्रयास' किया। तो "सगर-प्रयास" और "भगीरथ-प्रयास" में अन्तर क्या है ? अपने पुरुषार्थ पर, अपने बाहु-बल पर, अपने कर्म करने की शक्ति पर, सगर के पुत्रों को बड़ा विश्वास था। महानतम कर्म उन्होंने किया। समुद्र को खोद डालने का अभिप्राय है, कर्म की महानतम सीमा। पर संकेत क्या किया गया? बहुत बड़े से बड़ा पुरुषार्थी और कितना भी बड़ा कर्मयोगी क्यों न हो —आगे चलकरके कथा आती है न ? कि जब वे घोड़े को खोजने के लिए गए तो जब नीचे पाताल लोक में उन्होंने प्रवेश किया तो देखा कि एक वृक्ष के नीचे 'कपिल मुनि' बैठे हुए हैं। तो 'कपिल मुनि' के विषय में आपने सुना होगा कि, वे कर्म मार्ग के आचार्य न होकर के निवृत्ति और त्याग मार्ग के आचार्य हैं। वे बैठे हुए थे। और वह अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा वहीं पास में बँधा हुआ था। कपिल मुनि को तो पता ही नही था। इन्द्र ने चुराया और जानबूझ कर के कपिल मुनि के पास में बांध दिया, कि सगर के पुत्रों से झगड़ा कौन करे ? और अगर झगड़ा भी करें तो वे कपिल मुनि से करें। तो कपिल मुनि को देखकर के साठों हजार सगर के पुत्र बड़े बिगड़े और कहने लगे —"देखो ! कितना बड़ा पाखंडी है ? आँख मूँदे बैठा हुआ है। ऐसा लगता है, जैसे इसे पता ही नही है और चुराकर के घोड़े को यहाँ लाया हुआ है।" और इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति जब बहुत बड़ा पुरुषार्थी हो जाता है, शक्ति सम्पन्न हो जाता है तो, कभी-कभी महा-पुरुष को भी पाखण्डी समझ लेता है। तो कर्म के अतिरेक में कभी कभी जो कर्म से निवृत्त हो चुका है, जो भीतर डूब चुका है, उसको न समझने के कारण, उसका अपमान करता है। तो उनकी आहट को सुन करके ज्यों ही कपिल जी ने नेत्र खोलकर के देखा, वे सारे के सारे जलकर के नष्ट हो गए। और इसका अभिप्राय यह है कि अतिशय

कर्म भी, महानतम कर्म भी, यदि त्याग और निवृत्ति की उपेक्षा कर के अन्त में इस प्रकार की वृत्ति का आश्रय ले, तो वह कर्म कल्याणकारी न होकर के विनाश का हेतु बन जाता है।

पर दूसरी ओर उसी वंश में—कर्म की एक दूसरी धारा है। पुरुषार्थ की एक दूसरी धारा है। और वह दूसरी धारा भगीरथ की धारा है। कपिल मुनि के शाप से नष्ट होने वाले ये जितने सगर के साठ हजार पुत्र हैं, इनकी दुर्गति हो रही है, इनकी सद्गति कैसे हो? इनका कल्याण कैसे हो? इस पर जब विचार किया गया तो पता चला कि ब्रह्मा के कमण्डल में जो जल है, उन गंगा को यदि किसी तरह से अमर-लोक से मृत्यु-लोक में उतारा जाय, तब कहीं जा करके इन साठ हजार पुरखों का उद्धार होगा! और सचमुच बड़ा कठिन तप किया भगीरथ ने। ये भगीरथ तो पौत्र थे। परम्परा चली, अंशुमान ने तप किया। अंशुमान के द्वारा भी गंगा प्रगट नहीं हो पाईं। उन्होने अपना सारा जीवन लगा दिया, इस प्रयास में। लेकिन, गंगा प्रगट नहीं हुईं। और तब भगीरथ आए। भगीरथ गंगा को प्रगट करने के लिए चले, लेकिन उनका उद्देश्य क्या है? अपने पुरखों का उद्धार करना।" इसका अभिप्राय क्या है कि, अगर कर्म का उद्देश्य लोक कल्याण है, तो वही कर्म श्रेष्ठ है। इसीलिए महान कर्म को 'भगीरथ—प्रयास' कहते है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस कर्म से सबका हित हो, कल्याण हो, वही कर्म ही कर्म है और जिस कर्म के द्वारा हमारा अहङ्कार बढ़े, वह कर्म घातक है। विनाशक है। तो भगीरथ ने बड़ी तपस्या की। तो फिर यह प्रश्न आया, गंगा जी ने पूछा कि,—"मुझे धारण कौन करेगा?" देखिये, फिर वही मूल प्रश्न है—भक्ति सुलभ है कि दुर्लभ? तो रामायण मे भी आपको दोनों वाक्य मिलेगे। भक्ति के लिए एक ओर कहा गया—"रघुपति भगति करत कठिनाई" तथा कहा गया कि, राम की भक्ति जो है—

सबसे दुर्लभ सो खगराया।
राम भगति रति गत मद माया॥

भक्ति बड़ी दुर्लभ है। तो भक्ति की दुर्लभता सामने आ गई। गंगाजी ने प्रश्न किया कि,—"जब अमर लोक को छोड़कर मै मृत्युलोक में

उतरूँगी, तो मुझे धारण करने की सामर्थ्य किसमें है ? मैं जब उत-रूँगी तो मेरे आघात से पृथ्वी फट जाएगी, और मैं पुनः नीचे की ओर चली जाऊँगी ?" इसका अभिप्राय यह है कि, अगर अनाधि-कारी को भक्ति मिल जाय तो भक्ति को भय है कि कही हमारा ही पतन न हो जाय। और तब भगीरथ ने फिर कठिन तप किया, कठिन श्रम किया। और कठिन श्रम करके भगवान शङ्कर को प्रसन्न किया। बोले—'महाराज! मृत्यु-लोक में गंगा उतरना चाहती हैं, कृपा करके आप ही धारण कीजिए!" अब ये भगवान शङ्कर कौन हैं ? ये विश्वास के देवता है—'भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा-विश्वास रूपिणौ।" जो, अमरलोक मे बुद्धि के देवता के पास गंगा विद्यमान थी, मृत्युलोक में वह गंगा उतरी ? किसने धारण किया ? 'विश्वास' ने धारण किया। इसका अभिप्राय है कि, मृत्युलोक में जन्म लेने वाला भी जब भगवान शङ्कर को पा लेता है, विश्वास को पा लेता है, तो उसके जीवन मे भक्ति अवतरित होती है।

"बिनु विश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम"

और उसके पश्चात् भगीरथ भगवान शङ्कर जी से प्रार्थना करते हैं और शङ्कर जी अपनी जटा से गंगा की एक धारा दे देते है। भगीरथ उस गंगा को ले आते हैं और अपने सारे पुरखों का उद्धार करते है। यह है गंगा की दुर्लभता का प्रसंग—जो दिखाई देता है ब्रह्मा के प्रसंग में, भगीरथ के प्रसंग मे—कि भक्ति कितनी कठिन है ? ईश्वर की प्राप्ति कितनी कठिन है ?

लेकिन, इसका एक दूसरा पक्ष भी है। इसको आप यों कह लें—और इसको तो आप सांसारिक व्यवहार में भी देखते हैं कि किसी भी व्यक्ति के दो-दो रूप है। एक न्यायाधीश के विषय में किसी अन्य व्यक्ति से पूछा जाय कि वह कैसा है ? तो वह उसकी विद्वत्ता और योग्यता की महिमा गावेगा, और यह बताएगा कि यह न्याया-धीश बड़ा कड़ा या, बड़ा नियम का पालन करने वाला है। या ऐसा है, पर आप सोचिए, अगर उस न्यायाधीश के नन्हें से बालक से पूछ दिया जाय कि वे कैसे है ? तो उसके लिए वे न्यायाधीश नही, उसके

लिए तो पिता हैं। और बड़ी विचित्र बात है। जो न्यायाधीश, न्यायालय में इतना कठोर है कि जरा सी भूल होने पर मानहानि के अपराध में व्यक्ति को दण्ड दे देता है, वही न्यायाधीश घर में आया और उसका बच्चा कूद कर, उसके कन्धे पर बैठ गया। तो क्या उसको भी मानहानि के अपराध में कि तुमने मेरा अपमान किया है, दण्ड देगा क्या? वहाँ पर जो इतना कठोर दिखाई दे रहा है, बालक को गोद में ले करके वह उतना ही कोमल दिखाई देता है। तो भाई! यहाँ पर भी सङ्केत यही है। इसका अभिप्राय यह है कि जो समर्थ व्यक्ति है वह सुन ले कि ईश्वर सस्ता है, तो फिर ईश्वर की महिमा उसके समझ में नहीं आवेगी। इसलिए ईश्वर उसको महँगा मिलना चाहिए। पर कही अगर असमर्थ सुन ले कि, ईश्वर बहुत महँगा है, तो बेचारा निराश हो जाएगा कि हम तो ईश्वर को पा ही नहीं सकते। तो फिर ईश्वर कहता है—नही भाई! उनके लिये हम बहुत महँगे है, पर तुम्हारे लिए बहुत सस्ते है। केंवट इसी रहस्य को जान गया। केवट ने जब भगवान से कहा,—"कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना" तो इसका अभिप्राय यह है कि केवट इस सत्य को समझ चुका है अच्छी तरह से। क्या? कि, जब भगवान राघवेन्द्र आ गए तो केवट के पास क्या है? केवट ने न कोई साधना की, न कोई तपस्या किया। तो दो मान्यताएँ हुई। ब्रह्मा ने कहा—"अगर भगवान के चरण धोना है, तो पहले कमण्डल तो ले आओ! है ऐसा कमण्डल जिसमें चरण धोया जाय?" केवट से पूछा गया। ब्रह्मा कहते है—'पहले व्यक्ति, ईश्वर को पाने का पात्र बने, तब भगवान मिलेगे।" और केवट कहता है—"जब भगवान मिलेंगे, तभी व्यक्ति पात्र बन जाएगा।" वे कहते है—कमण्डल श्रेष्ठ हो तो चरण धुलें, और वह कहता है—जहाँ चरण धुलेगे, वही श्रेष्ठ हो जाएगा। इसलिए कठौते में भी मिलेगा। यह ईश्वर की सुलभता का पक्ष है। और इन दोनों का मनोवैज्ञानिक तात्पर्य है। यह जो ईश्वर केवट को मिला—गोस्वामी जी कहते है—केवट हर तरह से बाजी ले गया। कैसे? ब्रह्मा जी ने कमण्डल में धोया। वेद पढ़ करके जाना। केवट ने बिना पढ़े, वेद का बिना स्पर्श किये, वही जान लिया, पा लिया! इस सन्दर्भ में मुझे 'आलवन्दार स्तोत्र' मे यामुनाचार्य जी

का एक वाक्य याद आता है। उन्होने बहुत बढ़िया बात कही। उन्होंने कहा—'महाराज ! मैं और ब्रह्मा दोनों आपकी प्रार्थना करें, तो आप मुझ पर पहले प्रसन्न होगे, ब्रह्मा पर बाद में।" सुन के आश्चर्य हुआ ! क्यो? तो उन्होंने कहा—कि "महाराज ! जहां तक आपकी महिमा का प्रश्न है, न तो ब्रह्मा पूरी तरह से गा सकते हैं और न मै ही गा सकता हूँ। पर अन्तर यह है कि, ब्रह्मा के चार मुंह है, बड़ी लम्बी आयु है, भाषण करने की बड़ी शक्ति है। वे न जाने कितने दिनो तक आपकी महिमा गाते रहेगे। जल्दी थकेंगे नहीं। पर मै तो थोड़ी सी महिमा गा के थककर गिर जाऊँगा और आप गोद मे उठा लेगे ! तो मुझे ही आप पहले मिलेंगे, ब्रह्मा को बाद में मिलेगे।" तो गोस्वामी जी ने रामायण में भी यही दृष्टात दिया कि भई ! ससीम में, जो समर्थ है वह पहले सफल होता है। पर असीम मे, जो असमर्थ है वह। घर मे भोजन बने तो पहले बड़ा बालक पावेगा कि नन्हाँ बालक पावेगा ? बड़ा विचित्र सिद्धान्त है। बडा बालक बहुत योग्य हो, पर छोटे बालक की असमर्थता से, माँ की जो ममता है, माँ का जो वात्सल्य है, उस पर पहले उमड़ेगा। उसको लगेगा कि पहले हम इसको खिलायेंगे। बस, यही जो असमर्थता की सामर्थ्य है, वही केवट के पास है।

गोस्वामी जी ने दृष्टांत दिया—मच्छर और गरुड़, दोनो से कहा गया कि आकाश का अंत खोजकर जरा बताइए? दोनो उड़े। बेचारा मच्छर, घण्टे भर मे लौट आया। पूछा गया—आकाश का छोर तुमने छू लिया?— बोला—"भैया ! हमने अच्छी तरह से देख लिया, आकाश का कोई छोर नही है।" पर गरुड़, जी नही लौटे। हजारों वर्ष बाद लौटे। उनसे पूछा गया—आकाश का अन्त आपने देख लिया? बोले—"नही भाई ! मैंने हजार वर्ष भी उड़के देखा, पर नही मिला।" जिस सत्य को मच्छर ने घण्टे भर में जान लिया उस सत्य को जानने में गरुड़ को हजार वर्ष लग गये। केवट का अभिप्राय क्या है ? बोला "प्रभु ! मैं अगर आपको पाना चाहता तो कितनी कठिनाई है ?" पर, बड़ी बढ़िया बात उसने की ! कहा—"हम यही क्यो मान करके चले कि जीव आपको पाए ? ऐसा भी तो हो सकता

है कि आप जीव को पा लें।" तो यहाँ तो महाराज ! सारा क्रम वदल गया। यहाँ तो वेद का ज्ञान नही—नन्हे वालक को कौन सा ज्ञान होता है, कौन सा भाषण दे सकता है, कौन सा पाण्डित्य है उसमें ? और केवट के पास भी पात्रता नही है। कठौता है। पर ब्रह्मा भी पिछड़ गये और भगीरथ भी हार गये। क्यों ? भगीरथ जिस गंगा को ले आए थे उस गङ्गा ने भगीरथ के पुरखों का उद्धार किया। जव केवट गङ्गा जल ले आया तो भगवान ने पूछ दिया,—"गङ्गा तो सामने वह रही है, तुम मेरा चरण धोओगे तो फ़िर गङ्गा ही तो वनेगी। और जव गंगा सामने वह रही हैं, तो फिर नई गंगा क्यों बना रहे हो ?" केवट ने कहा—महाराज ! "ये पुरानी गंगा हमारे पुरखो को नही तार पाई, भगीरथ के पुरखों को तारा। इसलिए मै ऐसी नई गंगा लाना चाहता हूँ जो कि-मेरे पुरखो को तार दे ! साधना की गंगा से सवके पाप मिट गये, पर हमारे पुरखो के पाप नही मिटे ! गोस्वामी जी ने कहा —केवट भगीरथ से भी वाजी ले गया। वोले— "पद पखारि जल पान करि **आप सहित परिवार**"। भगीरथ ने तो केवल पुरखों को पार किया, पर इसने ? वोले—"पितरि पार करि प्रभुहि पुनि" जिसने पितरों को भी पार किया और भगवान को भी पार किया, वह तो सचमुच धन्य है। जव देवताओं ने फूल वरसा करके यह कहा कि इसके समान कोई भाग्यवान नही है, तो मानो यह आश्वासन है, कि अगर आप चाहते है तो दुर्लभ ईश्वर को पा लीजिए और, अगर आप सुलभ से सुलभ ईश्वर को चाहते है तो केवट आपको गंगा के किनारे विश्वास दिला रहा है। अब तो भगवान राम कह रहे है कि भैया ! जल्दी से जल लाकरके मेरा चरण धो लो ! केवट को वड़ी हँसी आई और जितने भक्तों ने देखा वड़े प्रसन्न हुए। वोले—"महाराज ! अभी तक तो हम लोगो को जल्दी रहती थी, जल्दी कीजिए ! दर्शन दीजिए।" पर चलिये, अव उलट गया क्रम। आपको ही शीघ्रता चरण देने की हो गई।" पाने की व्यग्रता के स्थान पर देने की व्यग्रता ! और इस तरह से कृपा का, करुणा का जो पक्ष है वह, केवट के प्रसंग के माध्यम से प्रगट होता है। इसके वाद का समापन और प्रसंग की समाप्ति कल होगी। आज इतना ही।

॥ वोलिए सियावर रामचन्द्र की जय ॥

श्री रामः शरणम् मम् ॥

८

भगवान राघवेन्द्र की असीम अनुकम्पा से यह पावन अनुष्ठान सम्पन्न होने जा रहा है। "बिरला अकाड्मी आफ आर्ट एण्ड कल्चर" के पवित्र संकल्प से यह आयोजन कई वर्षों से होता आ रहा है। इस के मूल मे श्री वसन्त कुमार जी बिरला और श्रद्धामयी श्रीमती सौभाग्यवती सरला जी बिरला का पवित्र संकल्प, इनकी मानस के प्रति और भगवान के प्रति महान आस्था, जो प्रतिवर्ष वर्धमान होती जा रही है, उसका यह प्रतिफल है। इसके लिये मैं उन्हे साधुवाद देता हूँ मङ्गल कामना प्रगट करता हूँ। और इस अवसर पर मैं उनके आदरणीय पिताश्री का स्मरण कर रहा हूँ, जो इस वर्ष तो यहाँ नहीं आये है, पर अगले वर्ण यहाँ आने का उन्होने वचन दिया है। वे नव्वे वर्ण में प्रवेश कर रहे है, और उन्होंने जो परम्परा निर्मित की है, वही प्रतिफलित हो रही है श्री वसन्त कुमार जी और श्रीमती सरला जी बिरला के रूप में। यद्यपि मुझसे एक दो दिन पूर्व उन्होने यही कहा कि जैसी श्रद्धा इन दोनों में है, वैसी श्रद्धा मुझमें नही है। इसे उनकी विनम्रता के साथ-साथ अगर हम ठीक-ठीक दूसरे रूप में देखे तो इसे यों कह सकते है कि वृक्ष की अपेक्षा यदि फल में मिठास अधिक हो, तो उसे अस्वाभाविक नही कहा जा सकता है। और मुझे विश्वास है कि उसी परम्परा को श्री आदित्य विक्रम जी भी आगे बढ़ावेगे और इस प्रकार के मंगलमय अनुष्ठानो के द्वारा निरन्तर समाज का कल्याण होता रहेगा। श्री बाबूलाल भाई बियाणी के अथक सेवा भाव, प्रेम और लगन से इस आयोजन के सम्पन्नता की समग्रता

में सहायता मिलती है। इस प्रसङ्ग में मैं उनका भी स्मरण करता हूं। और जब मै दृष्टि उठा करके देखता हूँ तो इतने परिचित और इतने स्मरण करने योग्य नाम सामने आते है कि मैं संकोच में गड़ जाता हूँ। तो उन सबके प्रति और आप सबके प्रति जिनके नाम से मैं परिचित नही हूँ पर जिनकी उमड़ती हुयी श्रद्धा भावना हमारे अंतःकरण को प्रेरित करती है। सत्य तो यह है कि केवट प्रसङ्ग की चर्चा जब चलती है, इस वर्ष यहां भी चली है, तो केवट प्रसङ्ग मेरे प्रिय प्रसङ्गों में से है। और उसकी प्रियता का रहस्य यह है कि केंवट ने जिस सरलता से प्रभु को पा लिया है, मैंने भी प्रभु की कृपा को किसी साधना के माध्यम से नहीं, कृपा के माध्यम से ही पाया है। इसलिये केवट का सत्य मेरे लिये केवल भाषण का सत्य नहीं है। वह मेरी अनुभूति का भी सत्य है। कई लोग पूछते हैं कि आप अपने इस जीवन की विलक्षण प्रतिभा का रहस्य बताइये, जो आप में विलक्षण भगवद् रस को प्रगट की सामर्थ्य है, उसके विषय में बताइये ! तो मैं यही कहता हूँ कि अगर किसी को अचानक लाटरी मिल जाय तो वह क्या बतावे कि लाटरी कैसे मिल गयी। तो इसी तरह से हमें तो कृपा की लाटरी मिली हुयी है। और ऐसी परिस्थिति में भगवान अपनी मंगलमयी कृपा के द्वारा, एक अत्यन्त क्षुद्र व्यक्ति को भी, मञ्च पर बैठा करके जो कहलवाना चाहते हैं, कहला लेते हैं। उसमें मेरा रञ्चमात्र कोई कर्तित्त्व, मेरा प्रयत्न और पुरुषार्थ नहीं है। और इसलिये केवट के सत्य को आप केवल कथा का ही सत्य न मानें उसे आप अनुभूति के सत्य रूप में भी देखें।

आज रामनवमी का पावन दिन है और अभी जब मैं केवट प्रसङ्ग की कथा कहने बैठा तो अचानक प्रातःकाल की बात याद आ गयी। प्रातःकाल नवान्ह पारायण का आयोजन चल रहा था, उसमें एक मीठा प्रसङ्ग आया—भगवान श्रीराम के राज्याभिषेक का। तो जब भगवान श्रीराम के राज्याभिषेक का प्रसङ्ग आया तो मुझे गुरु वशिष्ठ बनाया गया। तो आज जब मैं सवेरे गुरु वशिष्ठ बना और शाम को केवट बन रहा हूँ, तो यह बात बड़ी विचित्र सी प्रतीत होती है, बड़ी विरोधाभासी सी प्रतीत होती है। लेकिन भई ! यही तो विशेष

आनन्द है। रामकथा का आनन्द ही यही है कि भले ही उस युग में हम और आप न रहें हो; पर उस युग में जो पात्र थे, वे अपनी सीमा में थे। पर आज के युग में हमारे आपके लिये वड़ी सरलता हो गई। सवेरे राज्याभिषेक हुआ और दोपहर को भगवान का जन्मोत्सव हुआ सारा क्रम ही वदल गया। पहले जन्म और वाद में राज्याभिषेक, कि पहले राज्याभिषेक और वाद में जन्म? ऐसी स्थिति पर मै यही कहूँगा कि भक्ति का दिव्य रस यही है। और इसका अभिप्राय यही है कि यह भगवान की मंगलमयी लीला है। और भगवान की मंगल मयी लीला मे भक्तो को इतनी स्वतन्त्रता है और भगवान को इतनी परतन्त्रता है। वैसे ईश्वर स्वतन्त्र है और जीव परतन्त्र है। जीव का लक्षण वताते हुये कहा गया—"परवस जीव, स्ववस भगवन्ता"—देवर्षि नारद ने व्यङ्ग करते हुये भगवान से कहा—"परम स्वतंत्र न सिर पर कोई"—तुम परम स्वतन्त्र हो, तुम्हारे सिर पर कोई है ही नही। तो जीव वेचारा जो है पराधीन और ईश्वर स्वतन्त्र है। लेकिन भक्तो ने सारे क्रम को वदल दिया। और वह क्रम किस रूप में वदल गया? नारद जी के प्रसङ्ग में आता है कि नारद जी ने जव शाप दिया कि,—"परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई" तुम परम स्वतन्त्र हो, तो प्रभु को हँसी आ गयी। और प्रभु ने हँसकर के नारद जी ने जो शाप दिया, उसको सिर पर धारण कर लिया। गोस्वामी जी कहते है कि भगवान विष्णु जो है—"श्राप सीस धरि"—अपने सिर पर शाप धारण कर लेते हैं। यह सिर पर शाप धारण कर लेने मे, नारद से प्रभु का वड़ा मीठा विनोद है। नारद ने यह कहा था कि तुम परम स्वतन्त्र हो, तुम्हारे सिर पर कोई नही है। भगवान ने कहा—"नही महाराज!" मैं कहाँ स्वतन्त्र हूँ? वरदान को सिर पर धारण करने वाले तो मिलेंगे, पर मैंने तो आपका शाप सिर पर धारण कर लिया है। अव तो मैं रञ्चमात्र भी स्वतन्त्र नही रह गया। जव आप जैसा कहते है मैं वैसा करने के लिये वाध्य हो गया तो ऐसी परिस्थिति मे मेरी स्वतन्त्रता कहाँ है?" स्वतन्त्रता तो आपकी है। आप देखिए, विचित्र वात हो गयी न? स्वतन्त्र नारद है कि स्वतन्त्र भगवान है? नारद जी ने जो वात भगवान से कही, वह कोई परतन्त्र व्यक्ति कह सकता है? नारद भगवान से कहते हैं:—

असुर सुरा विष संकरहि आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपट व्यवहारु।।

और इस वाणी को सुनकर के भगवान श्री राघवेन्द्र बड़े प्रसन्न हुये। नारद जी ने भगवान से कभी पूछा—"प्रभु ! मैने कितनी बार आपकी स्तुति की, पर आप उतने प्रसन्न नही दिखायी पड़े, जितनी मैंने आपको अनर्गल बातें कहीं, उनको सुनकर प्रसन्न हुये।" भगवान ने मुस्कुरा करके कहा—"नारद इसमें हमको एक नयेपन का अनुभव हुआ, नया स्वाद मिला। रोज रोज वही स्तुति करते रहते थे तो उस में कोई रसानुभूति नही रह गयी। तो इसमें एक तो नवीनता है और दूसरा इसके द्वारा यह भी ज्ञात हो गया कि संसार के लोग इस तथ्य को समझ लें कि स्वतन्त्र कौन हैं ? परतन्त्र कौन है ? तो भक्तो ने कहा भई ! आओ दोनों में परिवर्तन कर लें। और वह परिवर्तन यही है कि ईश्वर परतन्त्र हो जाय और जीव स्वतन्त्र हो जाय। तो ऐसी स्थिति में लीला की स्वतन्त्रता यह है कि भगवान श्री राघवेन्द्र से आप जैसी लीला करने के लिए कहें, वे करने के लिए वाध्य है। यह आप पर स्वतन्त्रता है। सबेरे आपने राज्याभिषेक का पाठ किया तो राज्याभिपेक हो गया, सिंहासन पर बैठ गये, तिलक हो गया। दोपहर को आपने जन्मोत्सव मनाया तो भगवान का जन्म हो गया। और अब फिर क्रम उलट गया—अभी आपने भगवान राम को गंगा के किनारे लाकर खड़ा कर दिया और वे केवट से वार्तालाप करने को प्रस्तुत हो गये। इसका अर्थ यह है, कि लीला में भी ईश्वर स्वतन्त्र नही है। भक्त जिस क्रम में चाहे उसी क्रम से, जिस स्थान में कहे उसी स्थान में, भगवान का जन्म कर लेता है।

वैसे तो भगवान का जन्म हुआ अयोध्या में, पर आप लोगों ने दिल्ली में उनका जन्म कर लिया। भगवान केवट से मिले गंगा के किनारे चित्रकूट के मार्ग में, पर आपने यहाँ श्री लक्ष्मी नारायण के प्रांगण में भगवान राम और केवट को एक दूसरे के निकट देख लिया और इसका अभिप्राय क्या है ? हम और आप अपने जीवन में रस लेने के लिए प्रभु से जैसी लीला करने के लिए कहें, प्रभु उसी क्रम से

हमारे लिये लीला का निर्वाह कर देते है। समय होता तो मैं विस्तार से वताता। यह हमारी अन्तःकरण की आवश्यकता, हमारी मनःस्थिति पर निर्भर है कि हम भगवान की लीला को अपने जीवन में किस क्रम से देखना चाहते है। रामायण में भी आप एक सूत्र पावेंगे—जव गोस्वामी जी ने भगवान श्रीराम के नाम की वन्दना की, तो नाम भगवान की और भगवान श्रीराम के चरित्र की उन्होने तुलना की। और नाम भगवान और श्री राम के चरित्र की उन्होंने जो तुलना की, तो उसमे उन्होंने इतिहास के क्रम को वदल दिया। इतिहास में क्रम यह है कि भगवान राम ने पहले ताड़का का वध किया और फिर अहल्या का उद्धार किया। पर गोस्वामी जी ने नाम वन्दना के प्रसङ्ग में क्रम को उलटकर के, नाम भगवान की रामायण का जव वर्णन किया तव यह लिखा कि :—

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतु सुता की।
सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी॥
सहित दोष दुःख दास दुरासा।
दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥

इस पंक्ति में गोस्वामी जी कहते है कि जैसे भगवान ने अहल्या का उद्धार किया उसी प्रकार भगवान के नाम के द्वारा व्यक्ति की कुमति का उद्धार होता है। और जैसे भगवान ने ताड़का का वध किया उसी प्रकार से हमारे अन्तःकरण की जो दुराशा रूपी ताड़का है, उसका वध भी अपने अन्तःकरण में भगवान का नाम लेने के द्वारा होता है। पढ़ करके थोड़ा आश्चर्य होता है। चौपाइयों को केवल वदलना ही तो था। पीछे वाली चौपाई को पहले लिख देते तो रामायण की लीला का ठीक ठीक क्रम वना रहता। लेकिन क्रम वदल दिया। रामायण में क्रम था पहले ताड़का का वध और वाद में अहल्या का उद्धार। पर नाम रामायण में गोस्वामी जी ने क्रम वदलते हुये कहा—पहले अहल्या का उद्धार और वाद में ताड़का का वध। यह

क्या है ? यही भक्त की भावुकता है। भक्त के अन्तर्मन में क्या भावना है ? गोस्वामी जी से भगवान ने पूछा—"तुमने लीला क्रम को बदल क्यों दिया ?" गोस्वामी जी ने कहा कि महाराज ! जब आप त्रेतायुग में आये तो आपने दोनों शक्तियों का प्रदर्शन किया—संहार की भी और उद्धार की भी। ताड़का के प्रसङ्ग में आपकी संहार शक्ति प्रकट हुई और अहल्या के प्रसङ्ग में उद्धार शक्ति। तो यह त्रेतायुग वालों के लिए बिल्कुल ठीक था कि पहले आपने संहार किया और फिर उद्धार किया। पर इस युग में आप ऐसे क्रम से मत कीजिएगा। क्यों ? बोले—पहले संहार कीजिएगा तो डर के मारे लोग भाग खड़े होगे, इसलिए पहले उद्धार से ही शुरू कीजिए और जब लोग उद्धार के पश्चात् संहार समझने योग्य हो जाएँ, तब उनके जीवन में आप संहार प्रस्तुत करें।

इसका अभिप्राय यह है कि भक्त ने भगवान को देश की सीमा, काल की सीमा, व्यक्तित्त्व की सीमा से मुक्त करके भगवान की लीला को इतना विस्तार दे दिया कि चाहे जिस देश में, चाहे जिस काल में और चाहे जो व्यक्ति भगवान राम की लीला का जिस क्रम या जिस रूप में चाहे अनुभव कर सकता है, दर्शन कर सकता है, आनन्द प्राप्त कर सकता है। मैं और एक विशेष बात आपको बता दूं— भगवान श्री राम की कथा सुनने का सबसे बड़ा फल क्या है ? भगवान राम की कथा सुनने का सबसे बड़ा फल यह है, इस वर्ष मैं सीता-पञ्चमी के दिन अयोध्या मे था। वहाँ यह प्रश्न उठाया गया कि विवाह तो इतने वर्षो पहले हुआ था फिर यह विवाह प्रतिवर्ष किया जाता है इसका तात्पर्य क्या है ? तो मैंने कहा कि भाई ! भक्त बड़े चतुर है, जब वे भगवान राम और श्री सीता जी के विवाह का प्रसंग पढ़ते है, सुनते है, तो उनको एक ही कमी लगती है। और उसी कमी को पूरा करने के लिए वे बार-बार भगवान श्री राम के विवाह की लीला करते है। क्या ? तो मैंने कहा—भक्त जब यह पढ़ता है कि जब विवाह हुआ तो महाराज जनक ने कन्यादान दिया और भगवान राम ने कन्यादान ग्रहण किया। महाराज दशरथ ने आनन्द मनाया, मण्डप में अयोध्या के लोग बैठे हुए थे। तो भक्त के मन में एक कसक

आती है। क्या ? कि इस विवाह के मण्डप में सभी लोग थे पर मैं तो नही था न ! इसलिए चलो हम भी भगवान का विवाह करेंगे और उस मण्डप में हम भी रहेंगे। और हम चाहे दशरथ बन जायें, हम चाहें जनक बन जाये। तो भई ! सबेरे मैं वशिष्ठ बन गया था। वशिष्ठ बनने का भी एक आनन्द है, क्योंकि वह पंक्ति आती है—

"प्रथम तिलक बशिष्ठ मुनि कीन्हा।"

गुरु वशिष्ठ ने सबसे पहले भगवान राम को तिलक किया। तो मैं कहूँगा कि प्रथम तिलक करना हो तो वसिष्ठ मुनि बनिये और चरण पखारना हो तो केवट बन जाइए। दोनों में अपना-अपना आनन्द है। तिलक करने में भी सौभाग्य है। तिलक करने में भी भगवान श्री राम के सान्निध्य का, स्पर्श का सौभाग्य है और भगवान श्री राम के चरण पखारने में भी। पर अगर गुरु वशिष्ठ और केवट की तुलना ही करनी हो तो मैं कहूँगा कि केवट ने जिसे सरलता से पा लिया, गुरु वशिष्ठ ने नही पाया। गुरु वशिष्ठ तो उसको पाने के लिये इतने व्यग्र थे कि जब भगवान राम का राज्याभिषेक हो चुका तो एक दिन एकान्त में गुरु वशिष्ठ भगवान राम से मिलने आये। भगवान राम ने उठ करके स्वागत किया और आदर से सिंहासन पर बैठा करके उनकी पूजा की। उनका चरण धो करके चरणोदक लिया और पूरी तरह से पूजा करने के पश्चात् फिर हाथ जोड़ करके खड़े हो गए—कहने लगे—"गुरुदेव ! आपने बड़ा कष्ट किया। आज्ञा दीजिये ! मैं क्या सेवा करूँ ?" तो गुरु वशिष्ठ ने कहा कि पहला कार्य तो यह करो कि यह जितने लोग उपस्थित है उनसे कह दो कि वे बाहर चले जाएँ। सब बाहर चले गये। बोले—अब एकान्त में तुम्हारी, मेरी बात होगी। क्या ? गुरु वशिष्ठ ने मुस्कुरा करके कहा कि—"राम ! सचमुच तुम्हारी लीला धन्य है।" क्या ? बोले—"तुम शिष्य बने तो सचमुच ससार का कोई शिष्य क्या सेवा करेगा, क्या भक्ति करेगा जो तुम्हारे जीवन मे दिखाई देती है ! इससे लगता है कि लीला में जैसा तुमने, अपने आपको शिष्य के रूप में प्रस्तुत किया वैसा कोई कर नही सकता !" इस पर भगवान राम सङ्कोच

में गड़ गये। पर गुरु वशिष्ठ ने कहा—"सङ्कोच में गड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारी प्रशंसा करने नही आया हूँ, अपनी प्रशंसा करने आया हूँ।" क्या बोले—"तुम्हारा नाटक तो अच्छा है, पर मेरा नाटक तो तुमसे भी अच्छा है। शिष्य बन करके तुमने मेरी पूजा की, मेरा चरणोदक लिया, यह तो तुम्हारे शिष्यत्व का ठीक-ठीक परिचायक है। लेकिन यह पहिचानते हुए कि तुम साक्षात् भगवान हो, मैं अपना चरणोदक पिलाता रहा, इस मेरे साहस की कल्पना करो कि मैं अपने नाटक में कितना पक्का था? कि नही भाई, जब मैं गुरु बना हुआ हूँ तो अगर शिष्य के रूप मे भगवान भी हों तो उनसे भी पूजा स्वीकार करना चाहिए।" उन्होंने कहा—"अगर हमारे अभिनय की तुलना की जाय तो तुम्हारे अभिनय से मेरा अभिनय कितना अच्छा है?" प्रभु तो मुस्कुराये। हमारे प्रभु तो उसी शिष्यभाव में है। तो वशिष्ठ जी ने कहा देखो—"नाटक का एक नियम है कि जब नाटक में कोई अभिनेता बढ़िया अभिनय करके दिखाता है तो नाटक का जो सूत्रधार है, वह उसे पुरस्कार देता है। उस प्रस्तुतीकरण के लिए। उसी प्रकार से जो इस विश्व रङ्गमंच पर नाटक खेला गया, उसके सूत्रधार तो तुम ही हो। ईश्वर ही तो संसार को चला रहा है, नचा रहा है। और तुम्हारे इस संचालन में विश्व के रङ्गमंच पर प्रकट हो करके मैंने एक अभिनय किया और मेरा अभिनय यदि इतना अच्छा है तो तुम्हें चाहिए कि तुम उसके बदले में मुझे पुरस्कार दो!" भगवान फिर नहीं बोले। तो कहने लगे--"देखो भाई! अब परदा गिरा हुआ है। नाटक, मंच पर ही ठीक रहता है। परदा गिर जाय तो वह नाटक नही चलना चाहिए। अब यहाँ पर कोई दर्शक नही हैं, केवल हम और तुम है।" और तब शब्द उन्होने क्या सुन्दर कहा? गुरु वशिष्ठ क्या शब्द कहते है —वही, जो शब्द केवट ने गंगा के तट पर कहा था। इस समय गुरु जी भी वही शब्द भगवान राम से कहते है। केवट कहता है— "नाथ आज मै काह न पावा"—नाथ! आज मैने क्या नही पा लिया। गुरु वशिष्ठ ने भी हाथ जोड़ लिया प्रभु के सामने और यही शब्द कहा—

"नाथ एक बार मांगउँ राम कृपा करि देहु।"

मैं एक वरदान माँगता हूँ, आप कृपा करके दें ! वही कृपा का सूत्र! बड़े महत्त्व की बात है यह। भगवान की प्राप्ति साधना से होती है या कृपा से होती है ? कृपा से ईश्वर की प्राप्ति होती है, साधना से नहीं। इस भाषण को सुनकर कृपा करके आप लोग साधना का परित्याग नहीं कर देंगे। उसका यह तात्पर्य नहीं है। इसका तात्पर्य केवल इतना मात्र है कि साधना कीजिये, पर साधना के अभिमान का परित्याग कीजिये। यह मान करके चलिये कि अगर साधना से ही ईश्वर मिलते तो जो निःसाधन हैं, उन्हे किस प्रकार मिलते ? आप देख लीजिए—भगवान राम का चरण मिला केवट को।

भगवान राम का चरण पाने वाले एक और चतुर व्यक्ति रामायण में निकले जो पद में तो भगवान राम से बड़े थे, लेकिन चतुराई से उन्होने भगवान राम से ऐसा नाता जोड़ा कि भगवान श्री राम का चरण उन्हें प्राप्त हो गया। वे राजर्षि जनक हैं, जिन्हें श्री सीताजी के पिता होने का सौभाग्य मिला। तो महाराज जनक की विलक्षणता यह है कि सचमुच उन्हें चरण प्रक्षालन का प्रत्यक्ष सौभाग्य मिला क्योंकि उन्होंने श्वसुर और जामाता का नाता जोड़ा। यह एक विचित्र नाता है, जिसमें श्वसुर बड़ा होता हुआ भी जमाता के चरणों को धोता है, पखारता है। किसी ने पूछा तो गोस्वामी जी ने कह दिया कि जब भगवान राम ने जनक जी की ओर देखा तो उन्हे लगा कि ये तो तीनों से चतुर निकले ! क्यो ? बोले—"पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने"—महाराज दशरथ, गुरु वशिष्ठ और विश्वामित्र। और इसका अभिप्राय क्या ? कि तीनो कर्मयोगी, भक्ति योगी और ज्ञानयोगी हैं। और तीनों भगवान का चरण चाहते हैं। महाराज दशरथ भी मनु के रूप में कहते हैं :—

"सुत विषइक तव पद रति होऊ।"

पुत्र के रूप में मैं तुम्हारे चरणों से प्रेम करूँ ! विश्वामित्र भी कहते हैं :—

"एहूं मिस देखौं पद जाई।"

और गुरु वशिष्ठ को तो आप सुन ही रहे हैं कि भगवान श्रीराम से माँगते है कि आप कृपा करके चरणों को दीजिए। लेकिन भगवान राम को सोच करके आनन्द आता है कि तीनों की समस्या यह है कि तीनों ने ऐसा नाता जोड़ा है कि जिनसे मैं चरण छुलाने की धृष्टता तो कभी कर ही नही सकता। पिता का पुत्र के चरणों में प्रेम हो, यह भी युक्तिसङ्गत नही है। पर जनक ऐसे चतुर निकले कि वैसे नाता तो गुरुजनों का, पर भगवान का चरण मिल गया। तो भगवान का चरण प्रक्षालन करने वाले महाराज जनक है एक ओर, और गङ्गा के किनारे भगवान राम का चरण धोने वाला केवट है दूसरी ओर।

अब दोनों में आप तुलना करके देखिए, कोई साम्य है? जनक जी का प्रसंग पढे तो महाराज जनक ने मणिमय, स्वर्णमय मण्डप का निर्माण किया। यह बड़े महत्त्व की बात है। शवरी के बेर भगवान राम को मीठे लगे थे तो आप लोग यह भूल मत कीजिएगा कि आप तो स्वयं अंगूर खाइए और भगवान को बेर का ही भोग लगाइए, कि भगवान आपने तो शवरी के बेर ही पसन्द किए थे इसलिए मैं बेर ही खिलाऊँगा। शवरी के बेर प्रिय है, पर आपकी जो क्षमता है, साधना मानें? आप अपनी क्षमता का सही-सही सदुपयोग कीजिए। आपके पास जो धन है, आपके पास जो द्रव्य है, आपके पास जो वस्तु है, तो उस वस्तु को भगवान की सेवा में लगाइए। हाँ, यह मानकर मत लगाइए कि भगवान इस वस्तु के द्वारा वश में हो जायेंगे, वरन् यह मान करके लगाइये कि जब भगवान कृपा करके इसे स्वीकार करेंगे, तो यह वस्तु धन्य हो जाएगी। तो महाराज श्री जनक ने राजकीय स्वागत किया। भगवान श्री राघवेन्द्र के लिए सुन्दर मण्डप बनाया, पाँवड़े बिछाये, मखमली कालीन बिछवाई और भगवान राघवेन्द्र उस दिव्य नगर में कालीन के पाँवड़े पर चरण रखते हुए मण्डप में आते है। और वहाँ पर भगवान श्री राम को महाराज जनक, सुकोमल आसन पर बैठाते है। उसके पश्चात् भगवान श्री राम को देखते ही सुनयना जी और महाराज श्री जनक का अन्तःकरण गद्गद् हो जाता है। वे गद्गद् भाव से जल ले आकर सोने के पात्र में, भगवान राम का चरण पखारने लगते है। गोस्वामी जी ने लिखा :—

वरु बिलोकि दंपति अनुरागे ।
पायँ पुनीत पखारन लागे ॥

तो भगवान श्री राघवेन्द्र के सन्दर्भ मे जनक जी का प्रसंग पढ़ें तो ऐसा लगता है कि, भगवान का चरण अगर पाना हो तो जनक जैसा बनना पड़ेगा। जनक जैसा स्वर्णमय मणिमय-मण्डप चाहिए, जनक जैसी कालीन चाहिए, जनक जैसी सोने की थाल चाहिए, जनक जैसा ज्ञान चाहिए, जनक जैसा कर्मयोगी चाहिए, तब कहीं भगवान के चरणों को प्रक्षालन करने का दिव्य सौभाग्य प्राप्त होगा।

लेकिन, गोस्वामी जी ने केवट प्रसंग के द्वारा सारी बातों को काट दिया। उन्होंने कहा—अगर जाति के आधार पर भगवान मिलते तो जनक को मिलते, केवट को नहीं मिलते। जनक उच्च वर्ण के थे और केवट अस्पृश्य वर्ण का था। अगर पाण्डित्य से मिलते तो जनक महान पण्डित थे और केवट तो ऐसी अटपटी भाषा बोलता है कि कुछ क्षणों के लिए जनकनन्दिनी और श्री लक्ष्मण को भी बुरा लगता है। और एक ओर भगवान राघवेन्द्र का चरण पखारा जा रहा है सोने के पात्र में और दूसरी ओर काठ के कठौते मे। मानो भगवान ने यह आश्वासन दे दिया कि आपके पास जो है, सोने का बर्तन है तो सोने का लाइये, काष्ठ का पात्र है तो काष्ठ का पात्र लाइये। उच्च वर्ण के हैं, तो अपने वर्ण अभिमान को छोड़ करके भक्ति कीजिए, और सेवा वर्ग के है तो सेवा के द्वारा सौभाग्य प्राप्त कीजिये। केवट और महाराज जनक में जितनी वस्तुयें है वे सर्वथा एक दूसरे से भिन्न हैं। लेकिन, ध्यान रखिये, यह पता लगाइये कि दोनो मे कोई वस्तु समान मिल जाएगी। सारी वस्तुएँ अलग-अलग हैं। जाति नहीं, ज्ञान नहीं, ऐश्वर्य नहीं, पात्र नहीं, लेकिन एक शब्द गोस्वामी जी ने कहा, जो शब्द केवट के लिये कहा वही महाराज जनक के लिए और वह क्या है ? बोले;—

वरु बिलोकि दंपति अनुरागे ।
पायँ पुनीत पखारन लागे ॥

भगवान श्री राघवेन्द्र को देखकर महाराज श्री जनक अनुराग रस में डूब गये और अनुराग भरे हृदय से भगवान का चरण पखारने लगे और गोस्वामी जी ने जब केवट का वर्णन किया, तो उन्होंने कहा कि—केवट चाहे धन में महाराज जनक से पीछे हो, चाहे ज्ञान में पीछे हो, चाहे जाति मे पीछे हो, लेकिन इस वस्तु में महाराज श्री जनक से पीछे नही है। जब भगवान श्री राम ने कहा :—

बेगि आनु जल पाय पखारू ।
होत बिलंबु उतारहि पारू ॥
तो—**केवट राम रजायसु पावा ।**
पानि कठवता भरि लेइ आवा ॥

और—चरण धो रहा है तो उसकी दशा वही है जो श्री जनक जी की है। और शब्द भी तुलसीदास ने वही लिखा—

"अति आनंद उमगि अनुरागा ।"

और इसका अभिप्राय क्या है ? जनक में, केवट में जो वस्तु समान है वह है 'अनुराग'। और इसका अभिप्राय है कि ईश्वर मिलेगा तो अनुराग से मिलेगा। केवल किसी बहिरंग जाँति-पाँत की विशेषता से नही मिलेगा। यह अनुराग का जो साम्य है, इस दृष्टि से और भी इसके साङ्केतिक तत्त्व है। यह श्रद्धा का जो मार्ग है, दुर्लभता का मार्ग है। श्रद्धा जो होती है दुर्लभता में होती है। और प्रेम जो होता है सुलभता में होता है। ईश्वर में कुछ लोगो की श्रद्धा है और कुछ लोगो का ईश्वर से प्रेम है। तो श्रद्धा के मार्ग का साङ्केतिक अभिप्राय है कि पार्वती मूर्तिमती श्रद्धा है। उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या के द्वारा भगवान शङ्कर को प्राप्त किया। तो इसका अभिप्राय क्या हुआ ? बड़ा आश्चर्य होता है। क्या पार्वती बिना तपस्या के द्वारा भगवान शङ्कर को प्राप्त नही कर सकती थी ? इसके पीछे एक मनोविज्ञान है। पार्वती जी को लगा कि सती के रूप मे बिना साधना के, बिना तपस्या के, शङ्कर जी को मैने प्राप्त कर लिया तो मैं उनका मूल्य नही कर पायी और बिछुड़ गई। इसलिये इस बार

ऐसी कठिनाई से पाऊंगी कि जिससे निरन्तर उनको सम्हाले रहने की वृत्ति हो। और स्नेह का मार्ग, कृपा का मार्ग जो है, वह भिन्न मार्ग है। तो यह जो महाराज जनक का मार्ग है वह श्रद्धा का दिव्य मार्ग है, ज्ञान का दिव्य मार्ग है, कर्म का दिव्य मार्ग है, पर सबसे बडी महत्त्वपूर्ण वस्तु उनका दिव्य अनुराग है। और केवट के अन्तर्जीवन में यह अनुराग जो है वह विद्यमान है। और जब अनुराग भरे हृदय से केवट भगवान श्री राम का चरण पखारता है तो गोस्वामी जी कहते है कि आकाश से फूलो की वृष्टि होने लगती है।

"बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं"।
और सबके मुह से शब्द निकला—
"एहि सम पुण्यपुंज कोउ नाहीं"॥

इसके समान कोई पुण्यात्मा नही है। देवताओं से पूछ दिया गया —"कल तो इसे आप पापी कहते थे, आज पुण्यात्मा कैसे हो गया"? तो उन्होने यही कहा कि,—भाई! फल को देख करके वृक्ष का अनुमान होता है। भगवत्प्राप्ति का फल मिल गया तो अब कैसे कहें कि इसमें पुण्य नही है। क्योंकि सारे पुण्यों का परम फल तो ईश्वर की प्राप्ति ही है। और सचमुच केवट ने बड़ी सरलता से प्राप्त कर लिया। व्यग्र है भगवान स्वयं चरण देने के लिए, चरण धुलाने के लिए, पार जाने के लिए नही, 'क्योंकि यदि पार जाना होता तो विराट रूप बनाते और एक पग उधर ले जाते और एक पग इधर। लेकिन, जब भगवान कहते हैं—केवट! तुम जरा जल्दी कर दो, जल ले आ करके मेरा चरण धो दो, मुझे पार उतार दो, तो केवट को लगा कि मानों मित्रो! हमने तो प्रभु का मर्म जान लिया, आप लोग भी जान लीजिए कि जितना हम लोग उनको पाने के लिये बेचैन है, उससे अधिक वे हमें पाने के लिए बेचैन है! जीव भगवान से जितना प्रेम करता है, भगवान उससे अधिक प्रेम जीव से करते है। वे व्यग्र है जीव पर कृपा करने के लिए। अगर उस कृपा की अनुभूति नहीं हो पाती है तो उसका कारण कही न कही, हमारे अन्तःकरण का अवरोध है। इसलिए गुरु वशिष्ठ वही **'नाथ'** शब्द, वही **'कृपा'** शब्द का प्रयोग

करते है। गुरु वशिष्ठ ने इतनी तपस्या की है, त्याग किया है। गुरु वशिष्ठ पहले पुरोहित धर्म नहीं स्वीकार कहे रहे थे क्योंकि उसमें दान स्वीकार करना पड़ता है। इसलिये ऋषियों में इसे उच्चकोटि की स्थिति नही मानी जाती है। लेकिन ब्रह्मा ने तुरन्त कहा वसिष्ठ से—"पुरोहित बन जाओ।" वशिष्ठ जी ने कहा "महाराज! आप पुरोहित बन करके दान लेने के लिए कहते हो"? तो ब्रह्माजी ने बड़ी बढिया बात कही। ब्रह्माजी ने हँस करके कहा—"यह तो बताओ जो इतनी त्याग और तपस्या कर रहे हो, वह किस लिए कर रहे हो?" बोले—"भगवान को पाने के लिए।" तो ब्रह्मा बोले कि, "इसी वंश में भगवान जन्म लेने वाले और दान लेने वाने को ही मिलेगे, ता बोलो—त्याग करोगे कि दान लोगे?" तो वसिष्ठ जी बोले—"महाराज! तब तो दान ही लेगे"। अगर नीचे उतरने से भगवान मिले तो नीचे उतरना ही ठीक है। इसलिए गुरु वशिष्ठ इतनी तपस्या और साधना के बाद भी भगवान से याचना करते है। और याचना करते हुए कहते है—"नाथ एक वर माँगऊँ"—और कैसे दो? मेरी तपस्या और मेरे गुरुत्व से नहीं बल्कि,—"राम कृपा करि देहु।" बोले:—

"जनम-जनम प्रभु पद कमल
कबहूँ घटै जनि नेहु"

जन्म-जन्मान्तर में भी मेरा प्रेम जो है वह आपके चरणो में कभी कम न हो। प्रभु नें आश्चर्य से देखा—गुरुजी! आपका भी जन्म होगा क्या, जो आप जन्म-जन्म की माँग कर रहे है? गुरु वशिष्ठ ने कहा—"अवश्य होगा"। बोले, भाई! जो पाप से मुक्त होता है उसका जन्म नही होता है, अगर मुझसे कोई भूल होगी तो जन्म होगा कि नहीं? बोले मैंने तो सबसे बड़ा अपराध किया है चरण धुला करके। तब तो इसके पश्चात् मेरा जन्म होना ही चाहिए। पर यह अपराध मैंने जानबूझ करके किया है क्योंकि अगर मैं भी केवट होता तो ये चरण मुझे सरलता से मिल जाते। वर्षो से निरन्तर मैं तुम्हे देख रहा हूँ पर आज भी ये चरण उतने ही दूर हैं, उतने ही

दुर्लभ है। इसलिए मैं अब चाहूँगा कि अगले जन्म में ब्राह्मण न बन करके मैं भी किसी ऐसे रूप जन्म लूं, जिसे चरण देने में तुम्हें किसी प्रकार का संकोच न हो। गुरु वशिष्ठ का वाक्य सुनकर भी प्रभु अपने नाटक में पक्के रहे। हाँ या नहीं, कुछ भी नही बोले। पर गोस्वामी जी ने लिखा कि गुरु वशिष्ठ की वाणी भगवान श्रीराम को बड़ी प्रिय प्रतीत हुयी। तो भाई! सत्य यह है कि हम लोग बड़े सौभाग्यशाली है। आज रामनवमी के दिन नवान्ह पाठ मे राज्याभिषेक और सायंकाल को केवट और केवट के द्वारा साक्षात् भगवान को पार उतारने की लीला। आपको और हमें जो बनना पसन्द हो बनें और जब चाहे बदल दे। जिस रूप में आनन्द लेना चाहे, लें। आप अयोध्यावासी है, अयोध्या का आनन्द लीजिए। आप जनकपुरवासी है, जनकपुर का आनन्द लीजिए। चित्रकूट में भगवान जाएँ तो बनवासी कोल किरात बन जाइये। पर कुछ न कुछ बनिये जरूर। राम कथा का मुख्य उद्देश्य यह है कि भगवान राम हमारे व्यक्तित्त्व में, हमारे जीवन मे हों और हम राममय हों। श्रीराम के साथ हमारा जीवन जुड़ जाय। और जब श्रीराम के साथ हमारा जीवन जुड़ता है, तो हमारा जीवन धन्य हो जाता है, परिपूर्ण हो जाता है। इन शुभकामनाओ के साथ कि हमारे जीवन मे यह केवट प्रसंग साधना और समृद्धि के साथ-साथ निरन्तर विनम्रता की भावना और कृपा की स्मृति कराता रहे, मै भगवान के चरणो में प्रार्थना करता हुआ इस प्रसंग को समाप्त करता हूँ।

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपालु मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥

॥ सियावर रामचन्द्र की जय ॥